छान्दोग्योपनिषद्

वैदिक सनातन

विषय सूची

॥अथ छान्दोग्योपनिषत्॥ 11

॥ प्रथमोऽध्यायः प्रथम अध्याय ॥ 12

॥ प्रथम खण्ड ॥ 12

॥ द्वितीय खण्ड ॥ 18

॥ तृतीय खण्ड ॥ 25

॥ चतुर्थ खण्ड ॥ 32

॥ पञ्चम खण्ड ॥ 35

॥ षष्ठ खण्ड ॥ 37

॥ सप्तम खण्ड ॥ 42

॥ अष्टम खण्ड ॥ 47

॥ नवम खण्ड ॥ 52

॥ दशम खण्ड ॥ 54

॥ एकादश खण्ड ॥ 59

॥ द्वादश खण्ड ॥ 64

॥ त्रयोदश खण्ड ॥ 66

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥ 69

॥ प्रथम खण्ड ॥ 69

॥ द्वितीय खण्ड ॥... 72

॥ तृतीय खण्ड ॥... 74

॥ चतुर्थ खण्ड ॥ 75

॥ पञ्चम खण्ड ॥... 76

॥ षष्ठ खण्ड ॥ 78

॥ सप्तम खण्ड ॥.. 80

॥ अष्टम खण्ड ॥... 81

॥ नवम खण्ड ॥.. 83

॥ दशम खण्ड ॥... 87

॥ एकादश खण्ड ॥.. 91

॥ द्वादश खण्ड ॥.. 93

॥ त्रयोदश खण्ड ॥.. 94

॥ चतुर्दश खण्ड ॥ 95

॥ पञ्चदश खण्ड ॥ 97

॥ षोडश खण्ड ॥.. 98

॥ सप्तदश खण्ड ॥... 100

॥ अष्टादश खण्ड ॥.. 102

॥ एकोनविंश खण्ड ॥ 104

॥ विंश खण्ड ॥... 105

॥ एकविंश खण्ड ॥.. 107
॥ द्वाविंश खण्ड ॥... 109
॥ त्रयोविंश खण्ड ॥.. 113
॥ चतुर्विंश खण्ड ॥ 115
॥ तृतीयोऽध्यायः तृतीय अध्याय ॥.. 123
॥ प्रथम खण्ड ॥ 123
॥ द्वितीय खण्ड ॥... 125
॥ तृतीय खण्ड ॥.. 127
॥ चतुर्थ खण्ड ॥ 128
॥ पञ्चम खण्ड ॥.. 129
॥ षष्ठ खण्ड ॥ 132
॥ सप्तम खण्ड ॥.. 134
॥ अष्टम खण्ड ॥.. 136
॥ नवम खण्ड ॥... 138
॥ दशम खण्ड ॥... 140
॥ एकादश खण्ड ॥.. 142
॥ द्वादश खण्ड ॥... 144
॥ त्रयोदश खण्ड ॥.. 149
॥ चतुर्दश खण्ड ॥ 154
॥ पञ्चदश खण्ड ॥.. 156

॥ षोडश खण्ड ॥ 161
॥ सप्तदश खण्ड ॥ 166
अष्टादश खण्ड 170
एकोनविंश खण्ड 174
॥ चतुर्थोऽध्यायः चतुर्थ अध्याय ॥ 177
॥ प्रथम खण्ड ॥ 177
॥ द्वितीय खण्ड ॥ 182
॥ तृतीय खण्ड ॥ 184
॥ चतुर्थ खण्ड ॥ 189
॥ पञ्चम खण्ड ॥ 193
॥ षष्ठ खण्ड ॥ 195
॥ सप्तम खण्ड॥ 197
॥ अष्टम खण्ड ॥ 199
॥ नवम खण्ड ॥ 202
॥ दशम खण्ड ॥ 204
॥ एकादश खण्ड ॥ 206
॥ द्वादश खण्ड ॥ 207
॥ त्रयोदश खण्ड ॥ 209
॥ चतुर्दश खण्ड ॥ 210
॥ पञ्चदश खण्ड ॥ 213

॥ षोडश खण्ड ॥.. 215

॥ सप्तदश खण्ड ॥.. 217

॥ पञ्चमोऽध्यायः पंचम अध्याय ॥.. 222

॥ प्रथम खण्ड ॥ 222

॥ द्वितीय खण्ड ॥... 229

॥ तृतीय खण्ड ॥.. 234

॥ चतुर्थ खण्ड ॥ 237

॥ पञ्चम खण्ड ॥.. 239

॥ षष्ठ खण्ड॥ 240

॥ सप्तम खण्ड ॥... 242

॥ अष्टम खण्ड ॥.. 243

॥ नवम खण्ड ॥... 245

॥ दशम खण्ड ॥.. 246

॥ एकादश खण्ड ॥.. 251

॥ द्वादश खण्ड ॥.. 254

॥ त्रयोदश खण्ड ॥.. 255

॥ चतुर्दश खण्ड ॥ 258

॥ पञ्चदश खण्ड ॥.. 260

॥ षोडश खण्ड ॥.. 262

॥ सप्तदश खण्ड ॥.. 264

|| अष्टादश खण्ड ||.. 266
|| एकोनविंश खण्ड || 268
|| विंश खण्ड ||.. 269
|| एकविंश खण्ड ||.. 270
|| द्वाविंश खण्ड || 271
|| त्रयोविंश खण्ड ||.. 273
|| चतुर्विंश खण्ड || 274
|| षष्ठोऽध्यायः षष्ठ अध्याय ||.. 278
|| प्रथम खण्ड || 278
|| द्वितीय खण्ड ||.. 282
|| तृतीय खण्ड ||.. 285
|| चतुर्थ खण्ड || 287
|| पञ्चम खण्ड ||.. 290
|| षष्ठ खण्ड || 293
|| सप्तम खण्ड ||.. 296
|| अष्टम खण्ड ||.. 300
|| नवम खण्ड ||.. 306
|| दशम खण्ड ||.. 309
|| एकादश खण्ड ||.. 311
|| द्वादश खण्ड ||.. 314

॥ त्रयोदश खण्ड ॥.. 316
॥ चतुर्दश खण्ड ॥ 318
॥ पञ्चदश खण्ड ॥.. 321
॥ षोडश खण्ड ॥... 323
॥ सप्तमोऽध्यायः सप्तम अध्याय ॥ 326
॥ प्रथम खण्ड ॥ 326
॥ द्वितीय खण्ड ॥.. 330
॥तृतीय खण्ड॥.. 333
॥ चतुर्थ खण्ड ॥ 335
॥ पञ्चम खण्ड ॥.. 337
॥ षष्ठ खण्ड ॥ 340
॥ सप्तम खण्ड ॥.. 342
॥ अष्टम खण्ड ॥.. 345
॥ नवम खण्ड ॥.. 348
॥ दशम खण्ड ॥... 350
॥ एकादश खण्ड ॥... 352
॥ द्वादश खण्ड ॥.. 353
॥ त्रयोदश खण्ड ॥.. 355
॥ चतुर्दश खण्ड ॥ 357
॥ पञ्चदश खण्ड ॥ 358

॥ षोडश खण्ड ॥.. 361

॥ सप्तदश खण्ड ॥... 361

॥ अष्टादश खण्ड ॥... 362

॥ एकोनविंश खण्ड ॥ 363

॥ विंश खण्ड ॥.. 364

॥ एकविंश खण्ड ॥... 365

॥ द्वाविंश खण्ड ॥.. 366

॥ त्रयोविंश खण्ड ॥... 366

॥ चतुर्विंश खण्ड ॥ 367

॥ पञ्चविंश खण्ड ॥.. 369

॥ षडविंश खण्ड ॥ 370

॥ अष्टमोऽध्यायः आठवाँ अध्याय ॥... 374

॥ प्रथम खण्ड ॥ 374

॥ द्वितीय खण्ड ॥.. 378

॥ तृतीय खण्ड ॥.. 382

॥ चतुर्थ खण्ड ॥ 386

॥ पञ्चम खण्ड ॥.. 388

॥ षष्ठ खण्ड ॥ 390

॥ सप्तम खण्ड ॥.. 394

॥ अष्टम खण्ड ॥.. 398

॥ नवम खण्ड ॥.. 401

॥ दशम खण्ड ॥.. 404

॥ एकादश खण्ड ॥.. 407

॥ द्वादश खण्ड ॥ 410

॥ त्रयोदश खण्ड ॥... 414

॥ चतुर्दश खण्ड ॥ 415

॥ पञ्चदश खण्ड ॥ 416

॥ श्री हरि ॥

॥अथ छान्दोग्योपनिषत्॥

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः

श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ।

सर्वं ब्रह्मौपनिषदंमाऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु ।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

मेरे सभी अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत, बल तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां पुष्ट हों। यह सब उपनिशद्वेद्य ब्रह्म है । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ तथा ब्रह्म मेरा निराकरण न करें अर्थात मैं ब्रह्म से विमुख न होऊं और ब्रह्म मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो । उपनिषदों मे जो धर्म हैं वे आत्मज्ञान मे लगे हुए मुझ मे स्थापित हों। मुझ मे स्थापित हों।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

मेरे त्रिविध– अधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक तापों की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥ छान्दोग्योपनिषत्॥

॥ प्रथमोऽध्यायः प्रथम अध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ।

ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १.१.१॥

'ॐ' यह अक्षर ही उद्गीथ है, इसकी ही उपासना करनी चाहिए । 'ॐ' ऐसा ही उदगान करता है । उस की ही व्याख्या की जाती है ।1।

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या अपो रसः ।

अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः

पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः

साम्न उद्गीथो रसः ॥ १.१.२॥

इन भूतों का रस पृथ्वी है । पृथ्वी का रस जल है । जल का रस ओषधियाँ हैं, ओषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाक् है, वाक् का रस ऋक् है । ऋक् का रस साम है और साम का रस उद्गीथ है ।2।

स एष रसाना॑रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः ॥ १.१.३॥

यह जो उद्गीथ है, वह सम्पूर्ण रसों में रसतम, उत्कृष्ट, पर का प्रतीक होने योग्य और पृथ्वी आदि रसों में आठवाँ है ।3।

कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ

इति विमृष्टं भवति ॥ १.१.४॥

अब यह विचार किया जाता है कि कौन-कौन सा ऋक् है, कौन-कौन सा साम है और कौन-कौन सा उद्गीथ है ।4।

वागेवर्क्प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः ।

तद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक्च प्राणश्चर्क्च साम च ॥ १.१.५॥

वाक् ही ऋक् है, प्राण साम है और 'ॐ' यह अक्षर उद्गीथ है । ये जो ऋक् और समरूप वाक् और प्राण हैं, परस्पर मिथुन हैं ।5।

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे स॑सृज्यते

यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै

तावन्योन्यस्य कामम् ॥ १.१.६॥

वह यह मिथुन 'ॐ' इस अक्षर में संसृष्ट होता है । जिस समय मिथुन परस्पर मिलते हैं उस समय वे एक-दूसरे की कामनाओं को प्राप्त कराने वाले होते हैं ।6।

आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं

विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ १.१.७॥

जो विद्वान इस प्रकार इस उद्गीथरूप अक्षर की उपासना करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति कराने वाला होता है ।7।

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किंचानुजानात्योमित्येव

तदाहैषो एव समृद्धिर्यदनुज्ञा समर्धयिता ह वै

कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ १.१.८॥

वह यह ओंकार ही अनुज्ञा अक्षर है । मनुष्य किसी को कुछ अनुमति देता है तो 'ॐ' ऐसा ही कहता है । यह अनुज्ञा ही समृद्धि है । जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष इस उद्गीथ अक्षर की उपासना करता है, वह निश्चय ही सम्पूर्ण कामनाओं को समृद्ध करने वाला होता है ।8।

तेनेयं त्रयीविद्या वर्तते ओमित्याश्रावयत्योमिति

शꣳसत्योमित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना

रसेन ॥ १.१.९॥

उस अक्षर से ही यह त्रयीविद्या प्रवृत्त होती है । 'ॐ' ऐसा कहकर ही अध्वर्यु आश्रावण कर्म करता है, 'ॐ' ऐसा कहकर ही होता शंसन करता है तथा 'ॐ' ऐसा कहकर ही उद्गाता उद्गान करता है । इस अक्षर की पूजा के लिए ही सम्पूर्ण वैदिक कर्म हैं तथा इसी की महिमा और रस के द्वारा सब कर्म प्रवृत्त होते हैं ।9।

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद ।

नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति

श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति

खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥ १.१.१०॥

जो इस अक्षर को इस प्रकार जानता है और जो नहीं जानता, वे दोनों ही उसके द्वारा कर्म करते हैं। किन्तु विद्या और अविद्या दोनों भिन्न-भिन्न हैं। जो कर्म विद्या, श्रद्धा और योग से युक्त होकर किया जाता है वही प्रबलतर होता है, इस प्रकार निश्चय ही यह सब इस अक्षर की ही व्याख्या है ।10।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिरे उभये प्राजापत्यास्तद्ध

देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति ॥ १.२.१॥

प्रसिद्ध है, प्रजापति के पुत्र देवता और असुर किसी कारणवश युद्ध करने लगे। उनमें से देवताओं ने यह सोचकर कि इसके द्वारा इनका पराभव करेंगे, उद्गीथ का अनुष्ठान किया।1।

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासांचक्रिरे

तꣳ हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति

सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः ॥ १.२.२॥

उन्होंने नासिका में रहने वाले प्राण के रूप में उद्गीथ की उपासना की। किन्तु असुरों ने उसे पाप से संयुक्त कर दिया। इसी से वह सुगन्ध और दुर्गन्धि दोनों को सूँघता है, क्योंकि वह पाप से युक्त है।2।

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासांचक्रिरे ताꣳ हासुराः पाप्मना

विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यं चानृतं च

पाप्मना ह्येषा विद्धा ॥ १.२.३॥

फिर उन्होंने वाणी के रूप में उद्गीथ की उपासना की । किन्तु असुरों ने उसे पाप से संयुक्त कर दिया । इसी से लोक उसके द्वारा सत्य और मिथ्या दोनों बोलता है, क्योंकि वह पाप से संयुक्त है ।3।

अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः

पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं

चादर्शनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ १.२.४॥

फिर उन्होंने चक्षु के रूप में उद्गीथ की उपासना की । असुरों ने उसे भी पाप से संयुक्त कर दिया । इसी से लोक उससे देखने योग्य और न देखने योग्य दोनों प्रकार के पदार्थों को देखता है, क्योंकि वह पाप से संयुक्त है ।4।

अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः

पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ शृणोति श्रवणीयं

चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ १.२.५॥

फिर उन्होंने श्रोत्र के रूप में उद्गीथ की उपासना की । असुरों ने उसे भी पाप से संयुक्त कर दिया । इसी से लोक उससे सुनने योग्य और न सुनने योग्य दोनों प्रकार की बातों को सुनता है, क्योंकि वह पाप से संयुक्त है ।5।

अथ ह मन उद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः

पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳसंकल्पते संकल्पनीयंच

चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ १.२.६॥

फिर उन्होंने मन के रूप में उद्गीथ की उपासना की । असुरों ने उसे भी पाप से संयुक्त कर दिया । इसी कारण लोक उसके द्वारा संकल्प करने योग्य और संकल्प न करने योग्य दोनों ही का संकल्प करता है, क्योंकि वह पाप से संयुक्त है ।6।

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे

तꣳहासुरा ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाश्मानमाखणमृत्वा

विध्वꣳसेतैवम् ॥ १.२.७॥

फिर यह जो प्रसिद्ध मुख्य प्राण है उसी के रूप में उद्गीथ की उपासना की । उस के समीप पहुँचकर असुरगण इस प्रकार विध्वस्त हो गए जिस प्रकार दुर्भेद्य पाषाण से टकराकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है ।7।

यथाश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसत एवꣳ हैव

स विध्वꣳसते य एवंविदि पापं कामयते

यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः ॥ १.२.८॥

जिस प्रकार मिट्टी का ढेला दुर्भेद्य पाषाण को प्राप्त होकर विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वह व्यक्ति नाश को प्राप्त हो जाता है, जो इस प्रकार जानने वाले पुरुष के प्रति पापाचरण की कामना करता है, क्योंकि यह प्राणोपासक अभेद्य पाषाण ही है ।8।

नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष
तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान्प्राणानवति एतमु
एवान्ततोऽवित्त्वोत्क्रमति व्याददात्येवान्तत इति ॥ १.२.९॥

लोक इसके द्वारा न सुगन्ध को जानता है और न दुर्गन्ध को ही जानता है, क्योंकि यह पाप से पराभूत नहीं है । अतः यह जो कुछ खाता या पीता है उससे अन्य प्राणों का पोषण करता है । अन्त में इस मुख्य प्राण को प्राप्त न होने के कारण ही अन्य प्राणसमूह उत्क्रमण करता है और इसी कारण अन्त में पुरुष मुख फाड़ देता है ।9।

तꣳ हाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवाङ्गिरसं
मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः ॥ १.२.१०॥

अंगिरा ऋषि ने इस के ही रूप में उद्गीथ की उपासना की थी । अतः इस प्राण को ही आंगिरस मानते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण अंगों का रस है ।10।

तेन तꣳ ह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासांचक्र एतमु एव बृहस्पतिं

मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः ॥ १.२.११ ॥

इसी कारण बृहस्पति ने उस प्राण के रूप में उद्गीथ की उपासना की थी । अतः इस प्राण को ही बृहस्पति मानते हैं, क्योंकि वाक् ही बृहती है और यह उसका पति है ।11।

तेन तꣳ हायास्य उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवायास्यं

मन्यन्त आस्याद्यदयते ॥ १.२.१२॥

इसी कारण आयास्य ने उस प्राण के रूप में उद्गीथ की उपासना की थी ।अतः इस प्राण को ही आयास्य मानते हैं, क्योंकि यह आस्य (मुख) से निकलता है ।12।

तेन तꣳह बको दाल्भ्यो विदांचकार ।

स ह नैमिशीयानामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः

कामानागायति ॥ १.२.१३॥

अतः दल्भ के पुत्र बक ने उसे जाना। वह नैमिषारण्य में यज्ञ करने वालों का उद्गाता हुआ और उसने उनकी कामनापूर्ति के लिए उदगान किया।13।

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं

विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥ १.२.१४॥

इसे इस प्रकार जानने वाला जो विद्वान इस उद्गीथसंज्ञक अक्षर की इस प्रकार उपासना करता है, वह कामनाओं का आगान करने वाला होता है।14।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ तृतीय खण्ड ॥

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति

तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति ।

उद्यꣳस्तमो भयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य

तमसो भवति य एवं वेद ॥ १.३.१॥

इसके अनन्तर अधिदैवत उपासना का वर्णन किया जाता है, जो कि वह आदित्य तपता है, उसके रूप में उद्गीथ की उपासना करनी चाहिए । यह उदित होकर प्रजाओं के लिए उदगान करता है, उदित होकर अन्धकार और भय का नाश करता है । जो इस प्रकार इसको जानता है वह निश्चय ही अन्धकार और भय का नाश करने वाला होता है ।1।

समान उ एवायं चासौ चोष्णोऽयमुष्णोऽसौ

स्वर इतीममाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमुं

तस्माद्वा एतमिमममुं चोद्गीथमुपासीत ॥ १.३.२॥

यह प्राण और सूर्य परस्पर समान ही हैं । यह प्राण उष्ण है और वह सूर्य भी उष्ण है । इस प्राण को 'स्वर'- ऐसा कहते है और उस सूर्य को 'स्वर' एवं 'प्रत्यास्वर'- ऐसा कहते हैं । अतः इस प्राण और उस सूर्य रूप से उद्गीथ की उपासना करे ।2।

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै प्राणिति

स प्राणो यदपानिति सोऽपानः ।

अथ यः प्राणापानयोः संधिः स व्यानो यो व्यानः

सा वाक् ।

तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति ॥ १.३.३॥

तदनन्तर दूसरे प्रकार से- व्यानदृष्टि से ही उद्गीथ की उपासना करे। पुरुष जो प्राणन करता है वह प्राण है और जो अपश्वास लेता है वह अपान है। तथा प्राण और अपान की जो सन्धि है वही व्यान है। जो व्यान है वही वाक् है। इसी से पुरुष प्राण और अपान क्रिया न करते हुए ही वाणी बोलता है।3।

या वाक्सर्क्तस्मादप्राणन्ननपानन्नृचमभिव्याहरति

यर्क्तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन्साम गायति

यत्साम स उद्गीथस्तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति ॥ १.३.४॥

जो वाक् है वही ऋक् है। उसी से पुरुष प्राण और अपान की क्रिया न करता हुआ ऋक् का उच्चारण करता है। जो ऋक् है वही साम है। इसी से प्राण और अपान की क्रिया न करता हुआ सामगान करता है। जो साम है वही उद्गीथ है। इसी से प्राण और अपान की क्रिया न करता हुआ उदगान करता है।4।

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाग्नेर्मन्थनमाजेः

सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानꣳस्तानि

करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत ॥ १.३.५॥

इसके सिवा जो और भी वीर्ययुक्त कर्म हैं, जैसे अग्नि का मन्थन, किसी सीमा तक दौड़ना तथा सुदृढ़ धनुष को खींचना- इन सब कर्मों

को भी पुरुष प्राण और अपान की क्रिया न करता हुआ ही करता है । इस कारण व्यानदृष्टि से ही उद्गीथ की उपासना करनी चाहिए ।5।

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति

प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह

गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदꣳसर्वꣳस्थितम् ॥ १.३.६॥

इसके पश्चात् उद्गीथाक्षरों की- 'उद्गीथ' उस नाम के अक्षरों की उपासना करनी चाहिए- 'उद्गीथ' इस शब्द में प्राण ही 'उत्' है, क्योंकि प्राण से ही उठता है, वाणी ही 'गी' है, क्योंकि वाणी को 'गिरा' कहते हैं तथा अन्न ही 'थ' है, क्योंकि अन्न में ही यह सब स्थित है ।6।

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य

एवोद्वायुर्गीरग्निस्थः सामवेद एवोद्यजुर्वेदो

गीरृग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो

दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति ॥ १.३.७॥

द्यौ ही 'उत्' है, अन्तरिक्ष 'गी' है और पृथ्वी 'थ' है। आदित्य ही 'उत्' है, वायु 'गी' है और अग्नि 'थ' है। सामवेद ही 'उत्' है, यजुर्वेद 'गी' है और ऋग्वेद 'थ' है। इन अक्षरों को इस प्रकार जानने वाला जो विद्वान 'उद्गीथ' इस प्रकार इन उद्गीथाक्षरों की उपासना करता है उसके लिए वाणी, जो वाक् का दोह है, उसका दोहन करती है तथा वह अन्नवान और अन्न का भोक्ता होता है।7।

अथ खल्वाशीःसमृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत

येन साम्ना स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत् ॥ १.३.८॥

अब निश्चय ही कामनाओं की समृद्धि के साधन का वर्णन किया जाता है- अपने उपगन्तव्यों की इस प्रकार उपासना करे- जिस साम के द्वारा उद्गाता को स्तुति करना हो उस साम का चिन्तन करे।8।

यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां

देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ १.३.९॥

वह साम जिस ऋचा में प्रतिष्ठित हो उस ऋचा का, जिस ऋषि वाला हो उस ऋषि का तथा जिस जिस देवता की स्तुति करने वाला हो उस देवता का चिन्तन करे ।9।

येन च्छन्दसा स्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन

स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्तꣳस्तोममुपधावेत् ॥ १.३.१०॥

वह जिस छन्द के द्वारा स्तुति करने वाला हो उस छन्द का उपधावन करे तथा जिस स्तोम से स्तुति करने वाला हो उस स्तोम का चिन्तन करे ।10।

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत् ॥ १.३.११॥

जिस दिशा की स्तुति करने वाला हो उस दिशा का चिन्तन करे ।11।

आत्मानमन्तत उपसृत्य स्तुवीत कामं

ध्यायन्नप्रमत्तोऽभ्याशो ह यदस्मै स कामः समृध्येत

यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ॥ १.३.१२॥

अन्त में अपने स्वरूप का चिन्तन कर अपनी कामना का चिन्तन करते हुए अप्रमत्त होकर स्तुति करे । जिस फल की इच्छा से युक्त होकर वह स्तुति करता है वही फल तत्काल समृद्धि को प्राप्त होता है ।12।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति

तस्योपव्याख्यानम् ॥ १.४.१॥

'ॐ' यह अक्षर ही उद्गीथ है, इस प्रकार इसकी उपासना करे । 'ॐ' ऐसा ही उदगान करता है । उस की ही व्याख्या की जाती है ।1।

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशꣳस्ते

छन्दोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयꣳस्तच्छन्दसां

छन्दस्त्वम् ॥ १.४.२॥

मृत्यु से भय मानते हुए देवताओं ने त्रयीविद्या में प्रवेश किया । उन्होंने अपने को छन्दों से आच्छादित कर लिया । देवताओं का उनके द्वारा अपने को आच्छादित करना ही छन्दों का छन्दपन है ।2।

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं

पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि ।

ते नु विदित्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव

प्राविशन् ॥ १.४.३॥

जिस प्रकार मछेरा जल में मछलियों को देख लेता है, उसी प्रकार ऋक्, साम और यजुः सम्बन्धी कर्मों में लगे हुए उन देवताओं को मृत्यु ने देख लिया । इस बात को जान लेने पर देवताओं ने ऋक्, साम और यजुः सम्बन्धी कर्मों से निवृत्त होकर स्वर में ही प्रवेश किया ।3।

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवꣳसामैवं
यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य
देवा अमृता अभया अभवन् ॥ १.४.४॥

जिस समय ऋक् को प्राप्त करता है उस समय वह 'ॐ' ऐसा कहकर ही बड़े आदर से उच्चारण करता है । इसी प्रकार वह साम और यजुः को भी प्राप्त करता है । यह जो अक्षर है, वह अन्य स्वरों के समान स्वर है । यह अमृत और अभयरूप है, इसमें प्रविष्ट होकर देवगण अमृत और अभय हो गए थे ।4।

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरꣳ

स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता

देवास्तदमृतो भवति ॥ १.४.५॥

वह, जो इसे इस प्रकार जानने वाला होकर इस अक्षर की स्तुति करता है, इस अमृत और अभयरूप अक्षर में ही प्रवेश कर जाता है तथा इसमें प्रविष्ट होकर जिस प्रकार देवगण अमर हो गए थे, उसी प्रकार अमर हो जाता है ।5।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ पञ्चम खण्ड ॥

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ

इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति

ह्येष स्वरन्नेति ॥ १.५.१॥

निश्चय ही जो उद्गीथ है वही प्रणव है और जो प्रणव है वही उद्गीथ है । इस प्रकार यह आदित्य ही उद्गीथ है, यही प्रणव है, क्योंकि यह 'ॐ' ऐसा उच्चारण करता हुआ ही गमन करता है ।1।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति

ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मीꣳस्त्वं पर्यावर्तयाद्बहवो

वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् ॥ १.५.२॥

'मैंने प्रमुखता से इसी का गान किया था, इसी से मेरे तू एक ही पुत्र है'- ऐसा कौषीतकि ने अपने पुत्र से कहा । अतः तू रश्मियों का भेदरूप से चिन्तन कर । इससे निश्चय ही तेरे बहुत से पुत्र होंगे । यह अधिदैवत उपासना है ।2।

अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः

प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ १.५.३॥

इसके आगे अध्यात्म उपासना है- यह जो मुख्य प्राण है उसी के रूप में उद्गीथ की उपासना करें, क्योंकि यह 'ॐ' इस प्रकार अनुज्ञा करता हुआ गमन करता है ।3।

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह

कौषीतकिः पुत्रमुवाच प्राणाꣳस्त्वं

भूमानमभिगायताद्बहवो वै मे भविष्यन्तीति ॥ १.५.४॥

'मैंने प्रमुखता से केवल इसीका गान किया था, इसीलिए मेरे तू अकेला ही पुत्र हुआ'- ऐसा कौषीतकि ने अपने पुत्र से कहा । 'अतः तू- 'मेरे बहुत से पुत्र होंगे'- इस अभिप्राय से भेदगुणविशिष्ट प्राणों का प्रमुखता से गान कर' ।4।

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः

स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि

दुरुद्गीथमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीति ॥। १.५.५॥

निश्चय ही जो उद्गीथ है वही प्रणव है, तथा जो प्रणव है वही उद्गीथ है- इस प्रकार उद्गाता होता के कर्म में किये हुए उद्गानसम्बन्धी दोष का अनुसन्धान करता है, अनुसन्धान करता है ।5।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

॥ षष्ठ खण्ड ॥

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ़ꣳ साम

तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयत इयमेव

साग्निरमस्तत्साम ॥ १.६.१॥

पृथ्वी ही ऋक् है और अग्नि साम है । वह यह अग्निसंज्ञक साम ऋक् में ही अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है । यह पृथ्वी ही 'सा' है और अग्नि 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं ।1।

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ्ँ साम

तस्मादृच्यध्यूढ्ँ साम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा

वायुरमस्तत्साम ॥ १.६.२॥

अन्तरिक्ष ही ऋक् है और वायु साम है । वह यह साम ऋक् में ही अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है । अन्तरिक्ष ही 'सा' है और वायु 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं ।2।

द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ्ँ साम

तस्मादृच्यध्यूढ्ँ साम गीयते द्यौरेव

सादित्योऽमस्तत्साम ॥ १.६.३॥

द्यौ ही ऋक् है और आदित्य साम है । वह यह साम ऋक् में ही अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है । द्यौ ही 'सा' है और आदित्य 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं ।3।

नक्षत्राण्येवर्क्चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढ्ँ साम

तस्मादृच्यध्यूढ्ँ साम गीयते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा

अमस्तत्साम ॥ १.६.४॥

नक्षत्र ही ऋक् हैं और चन्द्रमा साम है । वह यह साम ऋक् में ही अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है । नक्षत्र ही 'सा' है और चन्द्रमा 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं ।4।

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः

कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम

तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते ॥ १.६.५॥

तथा यह जो आदित्य की शुक्लज्योति है वही ऋक् है और उसमें जो नीलवर्ण अत्यन्त श्यामता दिखाई देती है वह साम है । वह यह अग्निसंज्ञक साम ऋक् में ही अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है ।5।

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव

साथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणस्वात्सर्व एव सुवर्णः ॥ १.६.६॥

तथा यह जो आदित्य का शुक्ल प्रकाश है वही 'सा' है और जो नीलवर्ण अत्यन्त श्यामता है वही 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं । तथा यह जो आदित्यमण्डल के अन्तर्गत सुवर्णमय-सा पुरुष दिखाई देता है, जो सुवर्ण के समान श्मश्रुओंवाला और स्वर्णसदृश केशोंवाला है तथा जो नखपर्यन्त सारा-का-सारा सुवर्ण-सा ही है ।6।

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी

तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित

उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ १.६.७॥

उसके दोनों नेत्र बन्दर के बैठने के स्थान के सदृश अरुण वर्ण वाले पुण्डरीक के समान हैं । उसका ‘उत्’ ऐसा नाम है, क्योंकि वह सम्पूर्ण पापों से ऊपर गया हुआ है । जो इस प्रकार जानता है वह निश्चय ही सम्पूर्ण पापों से ऊपर उठ जाता है ।7।

तस्यर्क्च साम च गेष्णौ

तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता

स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे

देवकामानां चेत्यधिदैवतम् ॥ १.६.८॥

उस देव के ऋक् और साम- ये दोनों पक्ष हैं । इसी से वह देव उद्गीथरूप है, और इसी से इसका गान करने वाला उद्गाता कहलाता है, क्योंकि वह इस ‘उत्’ का ही गान करने वाला होता है । वह यह उत् नामक देव, जो इस अदित्यलोक से ऊपर के लोक हैं और जो देवताओं की कामनाएँ हैं, उनका शासन करता है । यह अधिदैवत उद्गीथोपासना है ।8।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

॥ सप्तम खण्ड ॥

अथाध्यात्मं वागेवक्प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ

साम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते।

वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ १.७.१॥

इससे आगे अध्यात्म उपासना है- वाणी ही ऋक् है और प्राण साम है । इस प्रकार इस ऋक् में साम अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है । वाक् ही 'सा' है और प्राण 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं ।1।

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम

तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते ।

चक्षुरेव सात्मामस्तत्साम ॥ १.७.२॥

चक्षु ही ऋक् है और आत्मा साम है । इस प्रकार इस ऋक् में साम अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है । चक्षु ही 'सा' है और आत्मा 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं ।2।

श्रोत्रमेवर्ङ्गनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम

तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते ।

श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥ १.७.३॥

श्रोत्र ही ऋक् है और मन साम है । इस प्रकार इस ऋक् में साम अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है । श्रोत्र ही 'सा' है और मन 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं ।3।

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः

कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम

तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते ।

अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साथ यन्नीलं परः

कृष्णं तदमस्तत्साम ॥ १.७.४॥

तथा यह जो आँखों का शुक्ल प्रकाश है वह ऋक् है और जो नीलवर्ण अत्यन्त श्यामता है वह साम है । इस प्रकार इस ऋक् में साम अधिष्ठित है । अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है । तथा यह जो नेत्र का शुक्ल प्रकाश है वही 'सा' है और जो नीलवर्ण परम श्यामता है वही 'अम' है, इस प्रकार ये साम हैं ।4।

अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क्तत्साम

तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपं

यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ॥ १.७.५॥

तथा यह जो नेत्रों के मध्य में पुरुष दिखलायी देता है वही ऋक् है, वही साम है, वही उक्थ है, वही यजुः है और वही ब्रह्म है। उस इस पुरुष का वही रुप है जो उस आदित्य-पुरुष का रूप है। जो उसके पक्ष हैं वही इसके पक्ष हैं, जो उसका नाम है वही इसका नाम है।5।

स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्यकामानां

चेति तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति

तस्मात्ते धनसनयः ॥ १.७.६॥

वह चाक्षुष पुरुष, जो इस अध्यात्म आत्मा से नीचे के लोक हैं उनका तथा मानवीय कामनाओं का शासन करता है। अतः जो ये लोक वीणा में गान करते हैं वे उसी का गान करते हैं, इसी से वे धनवान होते हैं।6।

अथ य एतदेवं विद्वान्साम गायत्युभौ स गायति

सोऽमुनैव स एष चामुष्मात्पराञ्चो

लोकास्ताꣳश्चाप्नोति देवकामाꣳश्च ॥ १.७.७॥

तथा जो इस प्रकार दोनों को जानने वाला पुरुष सामगान करता है वह दोनों का ही गान करता है । तथा वह इसके ही द्वारा, जो इस आदित्य लोक से ऊपर के लोक हैं और जो देवताओं के भोग हैं, उन्हें प्राप्त करता है ।7।

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ताꣳश्चाप्नोति

मनुष्यकामाꣳश्च तस्मादु हैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ॥ १.७.८॥

तथा इसी के द्वारा, जो इससे नीचे के लोक हैं उन्हें और मनुष्य सम्बन्धी कामनाओं को प्राप्त करता है । अतः इस प्रकार जानने वाला उद्गाता कहे- ।8।

कं ते काममागायानीत्येष ह्येव कामागानस्येष्टे य

एवं विद्वान्साम गायति साम गायति ॥ १.७.९॥

'मैं तेरे लिए किन इष्ट कामनाओं का आगान करूँ' क्योंकि यह उद्गाता कामनाओं के आगान में समर्थ होता है, जो कि इस प्रकार जानने वाला होकर सामगान करता है, सामगान करता है ।9।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

॥ अष्टम खण्ड ॥

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो

दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति ते होचुरुद्गीथे

वै कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति ॥ १.८.१॥

कहते हैं, शालावान का पुत्र शिलक, चिकितायन का पुत्र दालभ्य और जीवल का पुत्र प्रवाहण- ये तीनों उद्गीथ विद्या में कुशल थे । उन्होंने परस्पर कहा- 'हम लोग उद्गीथ विद्या में निपुण हैं, अतः यदि आप लोगों की अनुमति हो तो उद्गीथ के विषय में परस्पर वार्तालाप करें' ।1।

तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रावहणो जैवलिरुवाच

भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचꣳ श्रोष्यामीति

॥ १.८.२॥

तब वे 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर बैठ गए । फिर जीवल के पुत्र प्रवाहण ने कहा- 'पहले आप दोनों पूज्यवर प्रतिपादन करें । मैं आप ब्राह्मणों की कही हुई वाणी को श्रवण करूँगा' ।2।

स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच

हन्त त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच ॥ १.८.३॥

तब उस शालावान के पुत्र शिलक ने चिकितायनकुमार दालभ्य से कहा- 'यदि तुम्हारी अनुमति हो तो मैं तुमसे पूछूँ?' उसने कहा- 'पूछो' ।3।

का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच स्वरस्य का

गतिरिति   प्राण इति होवाच प्राणस्य का

गतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप

इति होवाच ॥ १.८.४॥

'साम की गति (आश्रय) क्या है?' इस पर दूसरे ने 'स्वर' ऐसा कहा । 'स्वर की गति क्या है?' ऐसा प्रश्न होने पर दूसरे ने 'प्राण' ऐसा कहा । 'प्राण की गति क्या है?' इस पर दूसरे ने 'अन्न' ऐसा कहा । तथा 'अन्न की गति क्या है?' ऐसा पूछे जाने पर दालभ्य ने 'जल' ऐसा कहा ।4।

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य

का गतिरिति न स्वर्गं लोकमिति नयेदिति होवाच स्वर्गं

वयं लोकꣳ सामाभिसंस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳहि

सामेति ॥ १.८.५॥

'जल की गति क्या है?' ऐसा प्रश्न होने पर उसने 'वह लोक' ऐसा कहा । 'उस लोक की गति क्या है?' इस पर दालभ्य ने कहा कि 'स्वर्गलोक का अतिक्रमण करके साम को कोई किसी दूसरे आश्रय में नहीं ले जा सकता । हम साम को स्वर्गलोक में ही स्थित करते हैं, क्योंकि साम की स्वर्गरूप से ही स्तुति की गई है' ।5।

तꣳ ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं
दाल्भ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम
यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते
विपतेदिति ॥ १.८.६॥

उस चिकितानपुत्र दालभ्य से शालावान के पुत्र शिलक ने कहा- 'हे दालभ्य! तेरा साम निश्चय ही अप्रतिष्ठित है । जो इस समय कोई सामवेत्ता यह कह दे कि 'तेरा मस्तक गिर जाए' तो निश्चय ही तेरा मस्तक गिर जाएगा ।6।

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाचामुष्य
लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवाचास्य लोकस्य
का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमिति नयेदिति होवाच
प्रतिष्ठां वयं लोकꣳ सामाभिसꣳस्थापयामः
प्रतिष्ठासꣳस्तावꣳ हि सामेति ॥ १.८.७॥

मैं यह बात श्रीमान् से जानना चाहूँगा, इस पर शिलक ने कहा- 'जान लो' । तब 'उस लोक की गति क्या है?' ऐसा पूछे जाने पर उसने 'यह लोक' ऐसा कहा । फिर 'इस लोक की गति क्या है?' ऐसा प्रश्न होने पर 'इस प्रतिष्ठाभूत लोक का अतिक्रमण करके साम को अन्यत्र नहीं ले जाना चाहिए' ऐसा कहा । हम प्रतिष्ठाभूत इस लोक में साम को स्थित करते हैं, क्योंकि साम का प्रतिष्ठारूप से ही स्तवन किया गया है ।7।

तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते

शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति

मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति

विद्धीति होवाच ॥ १.८.८॥

तब उससे जीवल के पुत्र प्रवाहण ने कहा- 'हे शालावत्य! निश्चय ही तुम्हारा साम अन्तवान है । यदि कोई ऐसा कह दे कि तुम्हारा मस्तक गिर जाए तो तुम्हारा मस्तक गिर जाएगा' । तब शालावत्य ने कहा- 'मैं इसे श्रीमान् से जानना चाहता हूँ' । इस पर प्रवाहण ने 'जान लो' ऐसा कहा ।8।

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

॥ नवम खण्ड ॥

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच

सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त

आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानकाशः

परायणम् ॥ १.९.१॥

'इस लोक की गति क्या है?' इस पर प्रवाहण ने कहा- 'आकाश, क्योंकि ये समस्त भूत आकाश से ही उत्पन्न होते हैं, आकाश में ही लय को प्राप्त होते हैं और आकाश ही इनसे बड़ा है, अतः आकाश ही इनका आश्रय है' ।1।

स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयो

हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति

य एतदेवं विद्वान्परोवरीयाꣳसमुद्गीथमुपास्ते ॥ १.९.२॥

वह यह उद्गीथ परम उत्कृष्ट है, यह अनन्त है । जो इसे इस प्रकार जानने वाला विद्वान इस परमोत्कृष्ट उद्गीथ की उपासना करता है उसका जीवन परमोत्कृष्ट हो जाता है और वह उत्तरोत्तर उत्कृष्ट लोकों को अपने अधीन कर लेता है ।2।

तꣳ हैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्यायोक्त्वोवाच

यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो

हैभ्यस्तावदस्मिꣳल्लोके जीवनं भविष्यति ॥ १.९.३॥

शुनक के पुत्र अतिधन्वा ने उस इस उद्गीथ का उदरशाण्डिल्य के प्रति निरूपण कर उससे कहा- जब तक तेरी संतति में से इस उद्गीथ को जानेंगे तब तक इस लोक में उनका जीवन उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर होता जाएगा ।3।

तथामुष्मिꣳल्लोके लोक इति स य एतमेवं विद्वानुपास्ते

परोवरीय एव हास्यास्मिꣳल्लोके जीवनं भवति

तथामुष्मिꣳल्लोके लोक इति लोके लोक इति ॥ १.९.४॥

तथा परलोक में भी उसे उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट लोक की प्राप्ति होती है । जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष इसकी उपासना करता है, उसका जीवन निश्चय ही इस लोक में उत्कृष्टतर होता है तथा परलोक में भी उसे उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर लोक प्राप्त होता है-परलोक में भी उसे उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर लोक प्राप्त होता है ।4।

॥ इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशम खण्ड ॥

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह

चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥ १.१०.१॥

ओले और पत्थर पड़ने से कुरुदेश की खेती चौपट हो जाने पर वहाँ इभ्य ग्राम के भीतर आटिकी पत्नी के साथ चक्र का पुत्र उषस्ति दुर्गति की अवस्था में रहता था ।1।

स हेभ्यं कुल्माषान्खादन्तं बिभिक्षे तꣳ होवाच ।

नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति

॥ १.१०.२॥

उसने घुने हुए उड़द खाने वाले महावत से याचना की । तब उसने उससे कहा- इन जूठे उड़दों के सिवा मेरे पास और नहीं है । जो कुछ एकत्र थे वे सब-के-सब तो मैंने भोजनपात्र में रख लिए हैं ।2।

एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ

हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतꣳस्यादिति होवाच

॥ १.१०.३॥

तू मुझे इन्हें ही दे दे- ऐसा उषस्ति ने कहा । तब महावत ने वे उड़द उसे दे दिए और कहा- 'यह अनुपान भी लो' । इस पर वह बोला- 'इसे लेने से मेरे द्वारा निश्चय ही उच्छिष्ट जल पीया जाएगा' ।3।

न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा

अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामो म

उदपानमिति ॥ १.१०.४॥

'क्या ये उड़द भी उच्छिष्ट नहीं हैं?' उसने कहा- 'इन्हें खाये बिना तो मैं जीवित नहीं रह सकता था, जलपान तो मुझे यथेच्छ मात्रा में मिलता है' ।4।

स ह खादित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार साग्र एव

सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ॥ १.१०.५॥

उन्हें खाकर वह बचे हुए उड़दों को अपनी पत्नी के लिए ले आया । वह पहले ही खूब भिक्षा प्राप्त कर चुकी थी । अतः उसने उन्हें लेकर रख दिया ।5।

स ह प्रातः संजिहान उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि

लभेमहि धनमात्राꣳराजासौ यक्ष्यते स मा

सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति ॥ १.१०.६॥

उसने प्रातःकाल शय्यात्याग करने के अनन्तर पत्नी से कहा- यदि हमें कुछ अन्न मिल जाता तो हम कुछ धन प्राप्त कर लेते, क्योंकि वह राजा यज्ञ करने वाला है, वह समस्त ऋत्विक्कर्मों के लिए मेरा वरण कर लेगा ।6।

तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुल्माषा इति

तान्खादित्वामुं यज्ञं विततमेयाय ॥ १.१०.७॥

उससे उसकी पत्नी ने कहा- 'स्वामिन्! वे उड़द ही ये मौजूद हैं' । उषस्ति उन्हें खाकर ऋत्विजों द्वारा विस्तारपूर्वक किये जाने वाले उस यज्ञ में गया ।7।

तत्रोद्गातृनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश

स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ १.१०.८॥

वहाँ जाकर स्तुति के स्थान में स्तुति करते हुए उद्गताओं के समीप बैठ गया और उसने प्रस्तोता से कहा- ।8।

प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि

मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ १.१०.९॥

हे प्रस्तोतः! जो देवता प्रस्ताव-भक्ति में अनुगत है, यदि तू उसे बिना जाने प्रस्तवन करेगा तो तेरा मस्तक गिर जाएगा ।9।

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां
चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ १.१०.१०॥

इसी प्रकार उसने उद्गाता से भी कहा- 'हे उद्गातः! जो देवता उद्गीथ में अनुगत है, यदि तू उसे जाने बिना उद्गान करेगा तो तेरा मस्तक गिर जाएगा ।10।

एवमेव प्रतिहर्तारमुवाच प्रतिहर्तर्या देवता

प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते

विपतिष्यतीति ते ह समारतास्तूष्णीमासांचक्रिरे

॥ १.१०.११॥

इसी प्रकार प्रतिहर्ता से भी कहा- 'हे प्रतिहर्तः! जो देवता प्रतिहार में अनुगत है, यदि तू उसे जाने बिना प्रतिहरण करेगा तो तेरा मस्तक गिर जाएगा' । तब वे प्रस्तोता आदि अपने-अपने कर्मों से उपरत हो मौन होकर बैठ गए ।11।

॥ इति दशमः खण्डः ॥

॥ एकादश खण्ड ॥

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं

विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति होवाच ॥ १.११.१॥

तब उससे यजमान ने कहा- 'मैं आप पूज्य-चरण को जानना चाहता हूँ' । इस पर उसने कहा- 'मैं चक्र का पुत्र उषस्ति हूँ' ।1।

स होवाच भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः

पर्यैषिषं भगवतो वा अहमवित्त्यान्यानवृषि ॥ १.११.२॥

मैंने इन समस्त ऋत्विक्कर्मों के लिए श्रीमान् को खोजा था । श्रीमान् के न मिलने से ही मैंने दूसरे ऋत्विजों का वरण किया था ।2।

भगवाꣳस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ

तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं

दद्यास्तावन्मम दद्या इति तथेति ह यजमान उवाच

॥ १.११.३॥

मेरे समस्त ऋत्विक्कर्मों के लिए श्रीमान् ही रहें- ऐसा सुनकर उषस्ति ने ‘ठीक है’ ऐसा कहा और बोला- ‘अच्छा तो मेरे द्वारा प्रसन्नता से आज्ञा दिए हुए ये ही लोग स्तुति करें, और तुम जितना धन इन्हें दो उतना ही मुझे देना’ । तब यजमान ने कहा- ‘ऐसा ही होगा’ ।3।

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता

प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते

विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति

॥ १.११.४ ॥

तदनन्तर उषस्ति के पास प्रस्तोता आया और बोला- ‘भगवन्! आपने जो मुझसे कहा था कि हे प्रस्तोतः! जो देवता प्रस्ताव में अनुगत है, यदि तू उसे बिना जाने प्रस्तवन करेगा तो तेरा मस्तक गिर जाएगा- सो वह देवता कौन है?’ ।4।

प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि

प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता

प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो

मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ १.११.५॥

उसने कहा- 'वह देवता प्राण है, क्योंकि ये समस्त भूत प्राण में ही प्रवेश कर जाते हैं और प्राण से ही उत्पन्न होते हैं। वह यह प्राणदेवता ही प्रस्ताव में अनुगत है, यदि तू उसे जाने बिना ही प्रस्तवन करता तो मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर तेरा मस्तक गिर जाता' ।5।

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता

तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति

मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ १.११.६॥

तदनन्तर उषस्ति के पास उद्गाता आया और बोला- 'भगवन्! आपने जो मुझसे कहा था कि हे उद्गातः! जो देवता उद्गीथ में अनुगत है, यदि तू उसे बिना जाने उद्गान करेगा तो तेरा मस्तक गिर जाएगा- सो वह देवता कौन है?' ।6।

आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि

भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा

देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो

मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ १.११.७॥

उसने कहा- 'वह देवता आदित्य है, क्योंकि ये समस्त भूत ऊँचे उठे आदित्य का ही गान करते हैं। वह यह आदित्यदेवता ही उद्गीथ में अनुगत है, यदि तू उसे जाने बिना ही उद्गान करता तो मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर तेरा मस्तक गिर जाता' ।7।

अथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद प्रतिहर्तर्या देवता
प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि
मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा
सा देवतेति ॥ १.११.८॥

तदनन्तर उषस्ति के पास प्रतिहर्ता आया और बोला- 'भगवन्! आपने जो मुझसे कहा था कि हे प्रतिहर्तः! जो देवता प्रतिहार में अनुगत है, यदि तू उसे बिना जाने प्रतिहरण करेगा तो तेरा मस्तक गिर जाएगा- सो वह देवता कौन है?' ।8।

अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतन्यन्नमेव
प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता
तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य
मयेति तथोक्तस्य मयेति ॥ १.११.९॥

उसने कहा- 'वह देवता अन्न है, क्योंकि ये समस्त भूत अपने प्रति अन्न का ही हरण करते हुए जीवित रहते हैं । वह यह अन्नदेवता ही प्रतिहार में अनुगत है, यदि तू उसे जाने बिना ही प्रतिहरण करता तो मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर तेरा मस्तक गिर जाता' ।9।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

॥ द्वादश खण्ड ॥

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा

मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥ १.१२.१॥

तदनन्तर अब शौव उद्गीथ का आरम्भ किया जाता है । वहाँ प्रसिद्ध है कि दल्भ का पुत्र बक अथवा मित्रा का पुत्र ग्लाव स्वाध्याय के लिए जलाशय के समीप गया ।1।

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान

उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायामवा

इति ॥ १.१२.२॥

उसके समीप एक श्वेत कुत्ता प्रकट हुआ । उसके पास दूसरे कुत्तों ने आकर कहा- 'भगवन्! आप हमारे लिए अन्न का आगान कीजिये, हम निश्चय ही भूखे हैं ।2।

तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध बको दाल्भ्यो

ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयांचकार ॥ १.१२.३॥

उनसे श्वेत कुत्ते ने कहा- 'तुम प्रातःकाल यहीं मेरे पास आना' । तब दालभ्य बक अथवा मैत्रेय ग्लाव उनकी प्रतीक्षा करता रहा ।3।

ते ह यथैवेदं बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सꣳरब्धाः

सर्पन्तीत्येवमाससृपुस्ते ह समुपविश्य

हिं चक्रुः ॥ १.१२.४॥

उन कुत्तों ने, जिस प्रकार कर्म में बहिष्पवमान स्तोत्र से स्तवन करने वाले उद्गाता परस्पर मिलकर भ्रमण करते हैं, उसी प्रकार भ्रमण किया और फिर वहाँ बैठकर हिंकार करने लगे ।4।

ओ३मदा३मों३पिबा३मों३ देवो वरुणः

प्रजपतिः सविता२न्नमिहा२हरदन्नपते३ऽन्नमिहा

२हरा२हरो३मिति ॥ १.१२.५॥

ॐ हम खाते हैं, ॐ हम पीते हैं, ॐ देवता, वरुण, प्रजापति, सूर्यदेव यहाँ अन्न लावें । हे अन्नपते! यहाँ अन्न लाओ, अन्न लाओ, ॐ ।5।

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

॥ त्रयोदश खण्ड ॥

अयं वाव लोको हाउकारः वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा

अथकारः । आत्मेहकारोऽग्निरीकारः ॥ १.१३.१॥

यह लोक ही हाउकार है, वायु हाईकार है, चन्द्रमा अथकार है, आत्मा इहकार है और अग्नि ईकार है ।1।

आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वे देवा

औहोयिकारः प्रजपतिर्हिंकारः प्राणः स्वरोऽन्नं या

वाग्विराट् ॥ १.१३.२॥

आदित्य ऊकार है, निहव एकार है, विश्वेदेव औहोयिकार हैं
हिंकार है तथा प्राण स्वर है, अन्न या है एवं विराट वाक् है ।2।, प्रजापति

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः संचरो हुंकारः ॥ १.१३.३॥

जिसका निरूपण नहीं किया जा सकता और जो संचार करने वाला है वह तेरहवाँ स्तोभ हुँकार है ।3।

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति

य एतामेवꣳसाम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेदेति ॥ १.१३.४॥

जो इस प्रकार इस साम सम्बन्धी उपनिषद् को जानता है उसे वाणी, जो वाणी का फल है, उस फल को देती है तथा वह अन्नवान और अन्न भक्षण करने वाला होता है ।4।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

समस्तस्य खलु साम्न उपासनꣳ साधु यत्खलु साधु

तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ॥ २.१.१॥

ॐ समस्त साम की उपासना साधु है । जो साधु होता है उसको साम कहते हैं और जो असाधु होता है वह असाम कहलाता है ।1।

तदुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव

तदाहुरसाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपगादित्येव

तदाहुः ॥ २.१.२॥

इसी विषय में कहते हैं- इस के पास सामद्वारा गया तो लोग यही कहते हैं कि वह इसके पास साधुभाव से गया और वह इसके पास

असामद्वारा गया तो लोग यही कहते हैं कि वह इसके यहाँ असाधुभाव से प्राप्त हुआ ।2।

अथोताप्याहुः साम नो बतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुरसाम नो बतेति यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः ॥२.१.३॥

इसके अनन्तर ऐसा भी कहते हैं कि हमारा साम अर्थात जब शुभ होता है तो ‘अहा ! बड़ा अच्छा हुआ ।’ ऐसा कहते हैं, और ऐसा भी कहते हैं कि हमारा असाम हुआ अर्थात जब अशुभ होता है तो ‘ओह ! बुरा हुआ ।’ ऐसा कहते हैं ।3।

स य एतदेवं विद्वानसाधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ

साधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः ॥ २.१.४॥

इसे ऐसे जानने वाला पुरुष ‘साम साधु है’ इस प्रकार उपासना करता है । उसके पास, जो साधु धर्म है वे शीघ्र ही आ जाते हैं और उसके प्रति विनम्र हो जाते हैं ।4।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत पृथिवी हिंकारः ।
अग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो
द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥ २.२.१॥

ऊपर के लोकों में निम्नांकितरूप से पाँच प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिए। पृथ्वी हिंकार हैं, अग्नि प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, आदित्य प्रतिहार है और द्युलोक निधन है ।1।

अथावृत्तेषु द्यौर्हिंकार आदित्यः
प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी
निधनम् ॥ २.२.२॥

अब अधोमुख लोकों में सामोपासना का निरूपण किया जाता है- द्युलोक हिंकार है, आदित्य प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, अग्नि प्रतिहार है और पृथ्वी निधन है ।2।

कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च य एतदेवं
विद्वाꣳल्लोकेषु पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ २.२.३॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष लोकों में पञ्चविध साम की उपासना करता है, उसके प्रति उर्ध्व और अधोमुख लोक भोग्यरूप से उपस्थित होते हैं ।3।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ तृतीय खण्ड ॥

वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपासीत पुरोवातो हिंकारो

मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते

स्तनयति स प्रतिहार उद्‌गृह्णाति तन्निधनम् ॥ २.३.१॥

वृष्टि में पाँच प्रकार के साम की उपासना करे । पूर्वीय वायु हिंकार है, मेघ जो उत्पन्न होता है वह प्रस्ताव है, जो बरसता है वह उद्गीथ है, जो चमकता और गर्जना करता है वह प्रतिहार है ।1।

वर्षति हास्मै वर्षयति ह य एतदेवं विद्वान्वृष्टौ

पञ्चविधꣳसामोपास्ते ॥ २.३.२॥

मेघ जो जल ग्रहण करता है वह निधन है । जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष वृष्टि में पाँच प्रकार के साम की उपासना करता है उसके लिए वर्षा होती है और वह वर्षा करा लेता है ।2।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳसामोपासीत मेघो यत्सम्प्लवते

स हिंकारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यः स्यन्दन्ते

स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः

समुद्रो निधनम् ॥ २.४.१॥

सब प्रकार के जलों में पाँच प्रकार के साम की उपासना करे । मेघ जो घनीभाव को प्राप्त होता है वह हिंकार है, जो बरसता है वह प्रस्ताव है, नदियाँ जो पूर्व की ओर बहती हैं वह उद्गीथ है तथा जो पश्चिम की ओर बहती हैं वह प्रतिहार है और समुद्र निधन है ।1।

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वास्वप्सु

पञ्चविधꣳसामोपास्ते ॥ २.४.२॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष सब जलों में पञ्चविध साम की उपासना करता है, वह जल में नहीं मरता और जल से सम्पन्न होता है ।2।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ पञ्चम खण्ड ॥

ऋतुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत वसन्तो हिंकारः

ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो

हेमन्तो निधनम् ॥ २.५.१॥

ऋतुओं में पाँच प्रकार के साम की उपासना करे । वसन्त हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, वर्षा उद्गीथ है, शरद प्रतिहार है और हेमन्त निधन है ।1।

कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान्भवति य एतदेवं

विद्वानृतुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २.५.२॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ऋतुओं में पाँच प्रकार के साम की उपासना करता है, उसे ऋतुएँ अपने अनुरूप भोग देती हैं और वह ऋतुमान होता है ।2।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

॥ षष्ठ खण्ड ॥

पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीताजा हिंकारोऽवयः

प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः

पुरुषो निधनम् ॥ २.६.१॥

पशुओं में पाँच प्रकार के साम की उपासना करे । बकरे हिंकार हैं भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौएँ उद्गीथ हैं, अश्व प्रतिहार हैं और पुरुष निधन है ।1।

भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति य एतदेवं

विद्वान्पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २.६.२॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष पशुओं में पञ्चविध साम की उपासना करता है, उसे पशु प्राप्त होते हैं और वह पशुधन से सम्पन्न होता है ।2।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

॥ सप्तम खण्ड ॥

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत प्राणो
हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो
मनो निधनं परोवरीयाꣳसि वा एतानि ॥ २.७.१॥

प्राणों में पाँच प्रकार के परोवरीय साम की उपासना करे । प्राण हिंकार है, वाक् प्रस्ताव है, चक्षु उद्गीथ है, श्रोत्र प्रतिहार है और मन निधन है । ये उपासनाएँ निश्चय ही परोवरीय हैं ।1।

परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं
विद्वान्प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्त इति तु पञ्चविधस्य
॥२.७.२॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष प्राणों में उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर साम की उपासना करता है, उसका जीवन उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर होता जाता है और वह उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर लोकों को जीत लेता है । यह पाँच प्रकार की सामोपासना का निरूपण किया गया ।2।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

॥ अष्टम खण्ड ॥

अथ सप्तविधस्य वाचि सप्तविध्ँ सामोपासीत

यत्किंच वाचो हुमिति स हिंकारो यत्प्रेति स प्रस्तावो

यदेति स आदिः ॥ २.८.१॥

अब सप्तविध साम की उपासना का प्रकरण है- वाणी में सप्तविध साम की उपासना करनी चाहिए। वाणी में जो कुछ 'हैं' ऐसा स्वरूप है वह हिंकार है, जो कुछ 'प्र' ऐसा स्वरूप है वह प्रस्ताव है, और जो कुछ 'आ' ऐसा स्वरूप है वह आदि है ।1।

यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो

यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ॥ २.८.२॥

जो कुछ 'उत्' ऐसा शब्दरूप है वह उद्गीथ है, जो कुछ 'प्रति' ऐसा स्वरूप है वह प्रतिहार है, जो कुछ 'उप' ऐसा शब्द है वह उपद्रव है और जो कुछ 'नि' ऐसा शब्दरूप है वह निधन है ।2।

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति

य एतदेवं विद्वान्वाचि सप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥ २.८.३॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष वाणी में सप्तविध साम की उपासना करता है, उसे वाणी, जो कुछ वाणी का दोह है, उसे देती है तथा वह प्रचुर अन्न से सम्पन्न और उसका भोक्ता होता है ।3।

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

॥ नवम खण्ड ॥

अथ खल्वमुमादित्यꣳसप्तविधꣳ सामोपासीत सर्वदा

समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण

समस्तेन साम ॥ २.९.१॥

अब उस आदित्य के रूप में सप्तविध साम की उपासना करनी चाहिए । आदित्य सर्वदा सम है, इसलिए वह साम है । मेरे प्रति वह ऐसा अनुभूत होने के कारण वह सबके प्रति सम है, इसलिए साम है ।1।

तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानीति

विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य

पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति

हिंकारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ २.९.२॥

उस आदित्य में ये सम्पूर्ण भूत अनुगत हैं- ऐसा जाने । जो उस आदित्य के उदय से पूर्व है वह हिंकार है । उस सूर्य का जो हिंकाररूप है उसके पशु अनुगत हैं, इससे वे हिंकार करते हैं । अतः वे ही इस अदित्यरूप साम के हिंकारभाजन हैं ।2।

अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रशꣳसाकामाः प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥२.९.३॥

तथा सूर्य के पहले-पहल उदित होने पर जो रूप होता है वह प्रस्ताव है । उसके उस रूप के मनुष्य अनुगामी हैं, अतः वे प्रस्तुति और प्रशंसा की इच्छा वाले हैं, क्योंकि वे इस साम की प्रस्तावभक्ति का सेवन करने वाले हैं ।2।

अथ यत्संगववेलायाꣳ स आदिस्तदस्य वयाꣳस्यन्वायत्तानि

तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्बणान्यादायात्मानं

परिपतन्त्यादिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ॥ २.९.४॥

तत्पश्चात आदित्य का जो रूप संगववेला में रहता है वह आदि है । उसके उस रूप के अनुगत पक्षिगण हैं , क्योंकि वे इस साम के आदि का भजन करने वाले हैं, इसलिए वे अन्तरिक्ष में अपने को निराधाररूप से सब ओर ले जाते हैं ।4।

अथ यत्सम्प्रतिमध्यंदिने स उद्गीथस्तदस्य

देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः

प्राजापत्यानामुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ २.९.५॥

तथा अब जो मध्य दिवस में आदित्य का रूप होता है वह उद्गीथ है । इसके उस रूप के देवतागण अनुगत हैं । इसीसे वे प्रजापति से उत्पन्न हुए प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे इस साम की उद्गीथभक्ति के भागी हैं ।5।

अथ यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्प्रागपराह्णात्स

प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते

प्रतिहृतानावपद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो

ह्येतस्य साम्नः ॥ २.९.६॥

तथा आदित्य का जो रुप मध्याह्न के पश्चात् और अपराह्न के पूर्व होता है वह प्रतिहार है । उसके उस रूप के अनुगामी गर्भ हैं । इसीसे वे प्रतिहृत किये जाने पर नीचे नहीं गिरते, क्योंकि वे इस साम की प्रतिहारभक्ति के पात्र हैं ।6।

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स

उपद्रवस्तदस्यारण्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते पुरुषं

दृष्ट्वा कक्षꣳश्वभ्रमित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनो

ह्येतस्य साम्नः ॥ २.९.७॥

तथा आदित्य का जो रूप अपराह्न के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व होता है वह उपद्रव है । उसके उस रूप के अनुगामी वन्य पशु हैं । इसीसे वे पुरुष को देखकर भयवश अरण्य अथवा गुहा में भाग जाते हैं, क्योंकि वे इस साम की उपद्रवभक्ति के भागी हैं ।7।

अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं तदस्य

पितरोऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो

ह्येतस्य साम्न एवं खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ

सामोपास्ते ॥ २.९.८॥

तथा आदित्य का जो रुप सूर्यास्त से पूर्व होता है वह निधन है । उसके उस रुप के अनुगत पितृगण हैं, इसीसे उन्हें स्थापित करते हैं, क्योंकि वे पितृगण निश्चय ही इस साम की निधनभक्ति के पात्र हैं ।8।

॥ इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशम खण्ड ॥

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳ

सामोपासीत हिंकार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव

इति त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ २.१०.१॥

अब समान अक्षरों वाले मृत्यु से अतीत सप्तविध साम की उपासना करे । 'हिंकार' यह तीन अक्षरों वाला है तथा 'प्रस्ताव' यह भी तीन अक्षरों वाला है, अतः उसके समान है ।1।

आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम्
॥२.१०.२॥

'आदि' यह दो अक्षरों वाला नाम है और 'प्रतिहार' यह चार अक्षरों वाला नाम है । इसमें से एक अक्षर निकालकर आदि में मिलाने से वे समान हो जाते हैं ।2।

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं

त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते

त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ २.१०.३॥

‘उद्गीथ’ यह तीन अक्षरों का और ‘उपद्रव’ यह चार अक्षरों का नाम है । ये दोनों तीन-तीन अक्षरों में तो समान हैं, किन्तु एक अक्षर बच रहता है । अतः तीन अक्षरों वाला होने से तो वह भी उसके समान ही है ।3।

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति

तानि ह वा एतानि द्वाविꣳशतिरक्षराणि ॥ २.१०.४॥

‘निधन’ यह नाम तीन अक्षरों का है, अतः यह उनके समान ही है । वे ही ये बाइस अक्षर हैं ।4।

एकविꣳशत्यादित्यमाप्नोत्येकविꣳशो वा

इतोऽसावादित्यो द्वाविꣳशेन परमादित्याज्जयति

तन्नाकं तद्विशोकम् ॥ २.१०.५॥

इक्कीस अक्षरों द्वारा साधक अदित्यलोक को प्राप्त करता है, क्योंकि इस लोक से वह आदित्य निश्चय ही इक्कीसवाँ है । बाइसवें अक्षर द्वारा वह आदित्य से परे उस दुःखहीन एवं शोकरहित लोक को जीत लेता है ।5।

आप्नोती हादित्यस्य जयं परो हास्यादित्यजयाज्जयो

भवति य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु

सप्तविधꣳ सामोपास्ते सामोपास्ते ॥ २.१०.६॥

अदित्यलोक की जय प्राप्त करता है तथा उसे आदित्यविजय से भी उत्कृष्ट जय प्राप्त होती है, जो इस उपासना को इस प्रकार जानने वाला होकर आत्मसम्मित और मृत्यु से अतीत सप्तविध साम की उपासना करता है – साम की उपासना करता है ।6।

॥ इति दशमः खण्डः ॥

॥ एकादश खण्ड ॥

मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः
प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ॥ २.११.१॥

मन हिंकार है, वाक् प्रस्ताव है, चक्षु उद्गीथ है, श्रोत्र प्रतिहार है और प्राण निधन है । यह गायत्रसंज्ञक साम प्राणों में प्रतिष्ठित है ।1।

स एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति
सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति
महान्कीर्त्या महामनाः स्यात्तद्व्रतम् ॥ २.११.२॥

वह जो इस प्रकार गायत्रसंज्ञक साम को प्राणों में प्रतिष्ठित जानता है, प्राणवान होता है, पूर्ण आयु का उपभोग करता है, प्रशस्त जीवनलाभ करता है, प्रजा और पशुओं द्वारा महान् होता है तथा कीर्ति के द्वारा भी महान् होता है । वह महामना होवे- यही उसका व्रत है ।2।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

॥ द्वादश खण्ड ॥

अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो

ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार

उपशाम्यति तन्निधनꣳ सꣳशाम्यति

तन्निधनमेतद्रथंतरमग्नौ प्रोतम् ॥ २.१२.१॥

अभिमन्थन करता है- यह हिंकार है, धूम उत्पन्न होता है- यह प्रस्ताव है, प्रज्वलित होता है- यह उद्गीथ है, अंगार होते हैं- यह प्रतिहार है तथा शान्त होने लगता है- यह निधन है और सर्वथा शान्त हो जाता है- यह भी निधन है । रथन्तरसाम अग्नि में प्रतिष्ठित है ।1।

स य एवमेतद्रथंतरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्यन्नादो

भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया

पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्ङग्निमाचामेन्न

निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ॥ २.१२.२॥

वह, जो पुरुष इस प्रकार इस रथन्तरसाम को अग्नि में अनुस्यूत जानता है वह ब्रह्मतेज से सम्पन्न और अन्न का भोक्ता होता है, पूर्ण

जीवन का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है । अग्नि की ओर मुख करके भक्षण न करे और न थूके ही- यह व्रत है ।2।

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

॥ त्रयोदश खण्ड ॥

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः

स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते

स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति

तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम्   ॥ २.१३.१॥

पुरुष जो संकेत करता है वह हिंकार है, जो तोष देता है वह प्रस्ताव है, स्त्री के साथ जो सोता है वह वह उद्गीथ है, अपनी अनेक पत्नियों में से प्रत्येक के साथ जो शयन करता है वह प्रतिहार है, मिथुन द्वारा जो समय बिताता है वह निधन है, मैथुन आदि क्रिया की जो समाप्ति करता है वह भी निधन ही है, यह वामदेव्यसाम मिथुन में ओतप्रोत है ।1।

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न कांचन परिहरेत्तद्व्रतम् ॥ २.१३.२॥

जो पुरुष इस प्रकार इस वामदेव्यसाम को मिथुन में ओतप्रोत जानता है, वह मिथुनवान होता है, प्रत्येक मैथुन से सन्तान को जन्म देता है। सारी आयु का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है। प्रजा और पशुओं के के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है। जिस उपासक के अनेक पत्नियाँ हों वह उनमें से किसी का भी परित्याग न करे, यह व्रत है।2।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

॥ चतुर्दश खण्ड ॥

उद्यन्हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यंदिन उद्गीथोऽपराह्णः

प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ॥ २.१४.१॥

उदित होता हुआ सूर्य हिंकार है, उदित हुआ प्रस्ताव है, मध्याह्नकालिक सूर्य उद्गीथ है, मध्याह्नोत्तरकालिक प्रतिहार है और जो अस्तमित होने वाला सूर्य है, वह निधन है। यह बृहत्साम सूर्य में स्थित है।1।

स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्व्यन्नादो
भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया
पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम्
॥ २.१४.२॥

वह पुरुष, जो इस प्रकार इस ब्रहत्साम को सूर्य में स्थित जानता है, तेजस्वी और अन्न का भोग करने वाला होता है । पूर्ण जीवन का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है । तपते हुए सूर्य की निन्दा न करे- यह नियम है ।2।

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

॥ पञ्चदश खण्ड ॥

अभ्राणि सम्प्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते

स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति

स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम्

॥ २.१५.१॥

बादल एकत्रित होते हैं- यह हिंकार है । मेघ उत्पन्न होता है- यह प्रस्ताव है । जल बरसता है- यह उद्गीथ है । बिजली चमकती और कड़कती है- यह प्रतिहार है तथा वृष्टि का उपसंहार होता है- यह निधन है । यह वैरूपसाम मेघ में ओतप्रोत है ।1।

स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद

विरूपाꣳश्च सुरूपꣳश्च पशूनवरुन्धे

सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति

महान्कीर्त्या वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २.१५.२॥

वह पुरुष, जो इस प्रकार इस वैरूप साम को पर्जन्य में अनुस्यूत जानता है वह विरूप और सुरूप पशुओं का अवरोध करता है, पूर्ण

आयु का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है । बरसते हुए मेघ की निन्दा न करे- यह व्रत है ।2।

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

॥ षोडश खण्ड ॥

वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः

शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम्

॥ २.१६.१॥

वसन्त हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, वर्षा उद्गीथ है, शरद ऋतु प्रतिहार है, हेमन्त निधन है- यह वैराज साम ऋतुओं में अनुस्यूत है ।1।

स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति

प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति

ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति

महान्कीर्त्यर्तॄन्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २.१६.२॥

वह पुरुष, जो इस प्रकार वैराज साम को ऋतुओं में अनुस्यूत जानता है, प्रजा, पशु और ब्रह्मतेज के कारण शोभित होता है, पूर्ण आयु का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है । ऋतुओं की निन्दा न करे यह व्रत है ।2।

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

॥ सप्तदश खण्ड ॥

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो

दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो

लोकेषु प्रोताः ॥ २.१७.१॥

पृथ्वी हिंकार है, अन्तरिक्ष प्रस्ताव है, द्युलोक उद्गीथ है, दिशाएँ प्रतिहार हैं और समुद्र निधन है- यह शक्करीसाम लोकों में अनुस्यूत है ।1।

स य एवमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति

सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति

महान्कीर्त्या लोकान्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २.१७.२॥

वह पुरुष, जो इस प्रकार इस शक्करीसाम को लोकों में अनुस्यूत जानता है, लोकवान होता है, पूर्ण आयु का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है । लोकों की निंदा न करे यह व्रत है ।2।

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

॥ अष्टादश खण्ड ॥

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः

पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥ २.१८.१॥

बकरी हिंकार है, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौएँ उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं और पुरुष निधन है- यह रेवती साम पशुओं में अनुस्यूत है ।1।

स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद

पशुमान्भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति

महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या

पशून्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २.१८.२॥

वह पुरुष जो इस प्रकार इस रेवती साम को पशुओं में अनुस्यूत जानता है, पशुमान होता है, पूर्ण आयु का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है । पशुओं की निंदा न करे- यह व्रत है ।2।

॥ इति अष्टादशः खण्डः ॥

॥ एकोनविंश खण्ड ॥

लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावो माꣳसमुद्गीथोस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ॥ २.१९.१॥

लोम हिंकार है, त्वचा प्रस्ताव हैं, मांस उद्गीथ हैं, अस्थि प्रतिहार हैं और मज्जा निधन है- यह यज्ञायज्ञीय साम अंगों में अनुस्यूत है ।1।

स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गी भवति नाङ्गेन विहूर्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद्व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ॥ २.१९.२॥

वह पुरुष जो इस प्रकार इस यज्ञायज्ञीय साम को अंगों में अनुस्यूत जानता है, अंगवान होता है, वह अंग के कारण कुटिल नहीं होता, पूर्ण आयु का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है । एक वर्ष तक मांस भक्षण न करे- यह व्रत है अथवा मांस भक्षण न करे- ऐसा नियम है ।2।

॥ इति एकोनविंशः खण्डः ॥

॥ विंश खण्ड ॥

अग्निर्हिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो

नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं

देवतासु प्रोतम् ॥ २.२०.१॥

अग्नि हिंकार है, वायु प्रस्ताव है, आदित्य उद्गीथ है, नक्षत्र प्रतिहार है और चन्द्रमा निधन है- यह राजन साम देवताओं में अनुस्यूत है ।1।

स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव

देवतानाꣳसलोकताꣳसर्ष्टिताꣳसायुज्यं गच्छति

सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति

महान्कीर्त्या ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २.२०.२॥

वह पुरुष जो इस प्रकार इस राजन साम को देवताओं में अनुस्यूत जानता है, उन्हीं देवताओं के सालोक्य, सार्ष्टित्व और सायुज्य को प्राप्त होता है, पूर्ण आयु का उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है । ब्राह्मणों की निन्दा न करे- यह व्रत है ।2।

॥ इति विंशः खण्डः ॥

॥ एकविंश खण्ड ॥

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स

प्रस्तावोऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि

वयाꣳसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः

पितरस्तन्निधनमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतम् ॥ २.२१.१॥

त्रयीविद्या हिंकार है । ये तीन लोक प्रस्ताव हैं । अग्नि, वायु और आदित्य उद्गीथ हैं । नक्षत्र, पक्षी और किरणें प्रतिहार हैं । सर्प, गंधर्व और पितृगण निधन हैं । यह सामोपासना सब में अनुस्यूत है ।1।

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वꣳ ह

भवति ॥ २.२१.२॥

वह जो इस प्रकार सब में अनुस्यूत इस साम को जानता है सर्वरूप हो जाता है ।2।

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणी त्रीणि
तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥ २.२१.३॥

इसी विषय में यह मन्त्र भी है- जो पाँच प्रकार के तीन-तीन बतलाये गए हैं, उनसे श्रेष्ठ तथा उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है ।3।

यस्तद्वेद स वेद सर्वꣳ सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति

सर्वमस्मीत्युपासित तद्व्रतं तद्व्रतम् ॥ २.२१.४॥

जो उसे जानता है वह सब कुछ जानता है । उसे सभी दिशाएँ बलि समर्पित करती हैं । 'मैं सब कुछ हूँ' इस प्रकार उपासना कर- यह नियम है, यह नियम है ।4।

॥ इति एकविंशः खण्डः ॥

॥ द्वाविंश खण्ड ॥

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः

प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः

श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं

वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत् ॥ २.२२.१॥

साम के 'विनर्दि' नामक गान का वरण करता हूँ, वह पशुओं के लिए हितकर है और अग्नि देवता सम्बन्धी उद्गीथ है । प्रजापति का उद्गीथ अनिरुक्त है, सोम का निरुक्त है, वायु का मृदुल और श्लक्ष्ण है, इन्द्र का श्लक्ष्ण और बलवान है, बृहस्पति का क्रौंच है और वरुण का अपध्वान्त है । इन सभी उद्गीथों का सेवन करे, केवल वरुण सम्बन्धी उद्गीथ का ही परित्याग कर दे ।1।

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत्स्वधां

पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः

स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मन आगायानीत्येतानि
मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥ २.२२.२॥

मैं देवताओं के लिए अमृतत्व का आगान करूँ- इस प्रकार चिन्तन करते हुए आगान करे । पितृगण के लिए स्वधा, मनुष्यों के लिए आशा, पशुओं के लिए तृण और जल, यजमान के लिए स्वर्गलोक और अपने लिए अन्न का आगान करूँ- इस प्रकार इनका मन से ध्यान करते हुए प्रमादरहित होकर स्तुति करे ।2।

सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मानः सर्व ऊष्माणः

प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं

यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रꣳशरणं प्रपन्नोऽभूवं

स त्वा प्रति वक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ २.२२.३॥

सम्पूर्ण स्वर इन्द्र के आत्मा हैं, समस्त उष्मवर्ण प्रजापति के आत्मा हैं, समस्त स्पर्शवर्ण मृत्यु के आत्मा हैं । उस उद्गाता को यदि कोई पुरुष स्वरों के उच्चारण में दोष प्रदर्शित करे तो वह उससे कहे कि मैं इन्द्र के शरणागत हूँ, वही तुझे इसका उत्तर देगा ।3।

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिꣳशरणं

प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं

ब्रूयादथ यद्येनꣳ स्पर्शेषूपालभेत मृत्युꣳ शरणं

प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति धक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात्

॥ २.२२.४॥

और यदि कोई इसे उष्मवर्णों के उच्चारण में दोष प्रदर्शित करे तो उससे कहे कि मैं प्रजापति के शरणागत था, वही तेरा मर्दन करेगा । और यदि कोई इसे स्पर्शों के उच्चारण में उलाहना दे तो उससे कहे कि मैं मृत्यु की शरण को प्राप्त था, वही तुझे दग्ध करेगा ।4।

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं
ददानीति सर्व ऊष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृता
वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा
लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं
परिहराणीति ॥ २.२२.५॥

सम्पूर्ण स्वर घोषयुक्त और बलयुक्त उच्चारण किये जाने चाहिए, अतः 'मैं इन्द्र में बल का आधान करूँ' ऐसा चिन्तन करना चाहिए । सारे उष्मवर्ण अग्रस्त, अनिरस्त एवं विवृतरूप से उच्चारण किये जाते हैं, अतः 'मैं प्रजापति को आत्मदान करूँ' ऐसा चिन्तन करना चाहिए । समस्त स्पर्शवर्णों को एक-दूसरे से तनिक भी मिलाये बिना ही बोलना चाहिए और उस समय 'मैं मृत्यु से अपना परिहार करूँ' ऐसा चिन्तन करना चाहिए ।5।

॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

॥ त्रयोविंश खण्ड ॥

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप
एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी
तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व
एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसꣳस्थोऽमृतत्वमेति ॥ २.२३.१॥

धर्म के तीन स्कन्ध हैं- यज्ञ अध्ययन और दान- यह पहला स्कन्ध है । तप ही दूसरा स्कन्ध है । आचार्यकुल में रहने वाला ब्रह्मचारी जो आचार्यकुल में अपने शरीर को अत्यन्त क्षीण कर देता है, तीसरा स्कन्ध है । ये सभी पुण्यलोक के भागी होते हैं । ब्रह्म में सम्यक् प्रकार से स्थित संन्यासी अमृतत्व को प्राप्त होता है ।1।

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या
सम्प्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि
सम्प्रास्त्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २.२३.२॥

प्रजापति ने लोकों के उद्देश्य से ध्यानरूप तप किया । उन अभितप्त लोकों से त्रयीविद्या की उत्पत्ति हुई तथा उस अभितप्त त्रयी विद्या से ‘भूः भुवः और स्वः’ ये अक्षर उत्पन्न हुए ।2।

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः

सम्प्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि

संतृण्णान्येवमोंकारेण सर्वा वाक्संतृण्णोंकार एवेदꣳसर्वमोंकार एवेदꣳ सर्वम् ॥ २.२३.३॥

उन अक्षरों का आलोचन किया । उन आलोचित अक्षरों से ओंकार उत्पन्न हुआ । जिस प्रकार शंकुओं से सम्पूर्ण पत्ते व्याप्त रहते हैं, उसी प्रकार ओंकार से सम्पूर्ण वाक् व्याप्त है । ओंकार ही यह सब कुछ है- ओंकार ही यह सब कुछ है ।3।

॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

॥ चतुर्विंश खण्ड ॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनꣳ रुद्राणां

माध्यंदिनꣳ सवनमादित्यानां च विश्वेषां च

देवानां तृतीयसवनम् ॥ २.२४.१॥

ब्रह्मवादी कहते हैं कि प्रातःसवन वसुओं का है, मध्याह्नसवन रुद्रों का है तथा तृतीय सवन आदित्य और विश्वेदेवों का है ।1।

क्व तर्हि यजमानस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात्कथं

कुर्यादथ विद्वान्कुर्यात् ॥ २.२४.२॥

तो फिर यजमान का लोक कहाँ है? जो यजमान उस लोक को नहीं जानता वह किस प्रकार यज्ञानुष्ठान करेगा? अतः उसे जानने वाला ही यज्ञ करेगा ।2।

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन

गार्हपत्यस्योदाङ्मुख उपविश्य स वासवꣳ

सामाभिगायति ॥ २.२४.३॥

प्रातः अनुवाक का आरम्भ करने से पूर्व वह गार्हपत्य अग्नि के पीछे की ओर उत्तराभिमुख बैठकर वसुदेवता सम्बन्धी साम का गान करता है ।3।

लो३कद्वारमपावा३र्णू ३३ पश्येम त्वा वयꣳ

रा ३३३३३ हु ३ म् आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ ३२१११

इति ॥ २.२४.४॥

तुम इस लोक का द्वार खोल दो, जिससे कि हम राज्य प्राप्ति के लिए तुम्हारा दर्शन कर लें ।4।

अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते

लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक

एतास्मि ॥ २.२४.५॥

तदनन्तर हवन करता है- पृथ्वी में रहने वाले इहलोक निवासी अग्निदेव को नमस्कार है । मुझ यजमान को तुम लोक की प्राप्ति कराओ । यह निश्चय ही यजमान का लोक है, मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ ।5।

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि

परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवनꣳ

सम्प्रयच्छन्ति ॥ २.२४.६॥

इस लोक में यजमान 'मैं आयु समाप्त होने के अनन्तर पुण्यलोक को प्राप्त होऊँगा 'स्वाहा'- ऐसा कहकर हवन करता है, और 'परिघ को नष्ट करो' ऐसा कहकर उत्थान करता है । वसुगण उसे प्रातःसवन प्रदान करते हैं ।6।

पुरा माध्यंदिनस्य

सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाग्नीध्रीयस्योदङ्मुख

उपविश्य स रौद्रꣳसामाभिगायति ॥ २.२४.७॥

मध्याह्न सवन का आरम्भ करने से पूर्व यजमान दक्षिणाग्नि के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर रुद्रदेवता सम्बन्धी साम का गान करता है ।7।

लो३कद्वारमपावा३र्णू३३ पश्येम त्वा वयं

वैरा३३३३३ हु३म् आ३३ज्या ३यो३आ३२१११इति

॥ २.२४.८॥

तुम इस लोक का द्वार खोल दो, जिससे कि हम वैराज्य पद की प्राप्ति के लिए तुम्हारा दर्शन कर सकें ।8।

अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते

लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक

एतास्मि ॥ २.२४.९॥

तदनन्तर हवन करता है- अन्तरिक्ष में रहने वाले अन्तरिक्षलोक निवासी वायुदेव को नमस्कार है । मुझ यजमान को तुम लोक की

प्राप्ति कराओ । यह निश्चय ही यजमान का लोक है, मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ ।9।

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि

परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा

माध्यंदिनꣳसवनꣳसम्प्रयच्छन्ति ॥ २.२४.१० ॥

यहाँ यजमान 'मैं आयु समाप्त होने के अनन्तर अन्तरिक्षलोक को प्राप्त होऊँगा 'स्वाहा'- ऐसा कहकर हवन करता है, और 'परिघ को नष्ट करो' ऐसा कहकर उत्थान करता है । रुद्रगण उसे मध्याह्नसवन प्रदान करते हैं ।10।

पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघनेनाहवनीयस्योदङ्मुख

उपविश्य स आदित्यꣳस वैश्वदेवꣳ सामाभिगायति

॥ २.२४.११ ॥

तृतीय सवन का आरम्भ करने से पूर्व यजमान आहवनीयाग्नि के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर आदित्य और विश्वेदेव सम्बन्धी साम का गान करता है ।11।

लो३कद्वारमपावा३र्णू३३पश्येम त्वा वयꣳ स्वारा

३३३३३ हु३म् आ३३ ज्या३ यो३आ ३२१११ इति

॥ २.२४.१२॥

लोक का द्वार खोल दो, जिससे कि हम स्वाराज्य पद की प्राप्ति के लिए तुम्हारा दर्शन कर सकें ।12।

आदित्यमथ वैश्वदेवं लो३कद्वारमपावा३र्णू३३ पश्येम

त्वा वयꣳसाम्रा३३३३३ हु३म् आ३३ ज्या३यो३आ ३२१११

इति ॥ २.२४.१३॥

यह आदित्य सम्बन्धी साम है अब विश्वेदेव सम्बन्धी साम कहते हैं- लोक का द्वार खोल दो, जिससे कि हम साम्राज्य प्राप्ति के लिए तुम्हारा दर्शन कर सकें ।13।

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो

दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय

विन्दत ॥ २.२४.१४॥

तदनन्तर हवन करता है- स्वर्ग में रहने वाले द्युलोक निवासी आदित्यों को और विश्वेदेवों को नमस्कार है । मुझ यजमान को तुम लोक की प्राप्ति कराओ ।14।

एष वै यजमानस्य लोक एतास्म्यत्र यजमानः

परस्तादायुषः स्वाहापहत परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति

॥ २.२४.१५॥

यह निश्चय ही यजमान का लोक है, मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ । यहाँ यजमान ‘मैं आयु समाप्त होने के अनन्तर इसे प्राप्त होऊँगा ‘स्वाहा’- ऐसा कहकर हवन करता है, और ‘परिघ को नष्ट करो’ ऐसा कहकर उत्थान करता है ।15।

तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीयसवनꣳ

सम्प्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं वेद

य एवं वेद ॥ २.२४.१६॥

उसको आदित्य और विश्वेदेव तृतीय सवन प्रदान करते हैं । जो इस प्रकार जनता है, जो इस प्रकार जनता है वह निश्चय ही यज्ञ की मात्रा को जनता है ।16।

॥ इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ तृतीयोऽध्यायः तृतीय अध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव

तिरश्चीनवꣳशोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः ॥ ३.१.१॥

ॐ यह आदित्य निश्चय ही देवताओं का मधु है । द्‍युलोक ही उसका तिरछा बाँस है, अन्तरिक्ष छत्ता है और किरणें मक्खियों के बच्चे हैं ।1।

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाड्यः ।

ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता

आपस्ता वा एता ऋचः ॥ ३.१.२॥

उस आदित्य की जो पूर्व दिशा की किरणें हैं, वे ही इसके पूर्वदिशावर्ती छिद्र हैं । ऋक् ही मधुकर हैं, ऋग्वेद ही पुष्प हैं, वे सोम आदि अमृत ही जल हैं ।2।

एतमृग्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज

इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत ॥ ३.१.३॥

उन इन ऋक् ने ही इस ऋग्वेद का अभितप किया। उस अभितप्त ऋग्वेद से यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ।3।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा

एतद्यदेतदादित्यस्य रोहितꣳरूपम् ॥ ३.१.४॥

वह यश आदि रस विशेषरूप से गया। उसने जाकर आदित्य के पूर्व भाग में आश्रय लिया। यह जो आदित्य का रोहित (लाल) रूप है वही यह रस है।4।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा

मधुनाड्यो यजूꣳष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं

ता अमृत आपः ॥ ३.२.१॥

तथा इसकी जो दक्षिण दिशा की किरणें हैं वे ही इसकी दक्षिणदिशावर्तिनी मधुनाड़ियाँ हैं, यजुःश्रुतियाँ ही मधुकर हैं, यजुर्वेद ही पुष्प हैं तथा वह सोमादिरूप अमृत ही आप है ।1।

तानि वा एतानि यजूꣳष्येतं

यजुर्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं

वीर्यमन्नाद्यꣳरसोजायत ॥ ३.२.२॥

उन इन यजुःश्रुतियों ने इस यजुर्वेद का अभिताप किया । उस अभितप्त यजुर्वेद से यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ ।2।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा

एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लꣳ रूपम् ॥ ३.२.३॥

वह रस विशेषरूप से गया । उसने जाकर आदित्य के दक्षिण भाग में आश्रय लिया । यह जो आदित्य का शुक्ल रूप है वही यह है ।3।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ तृतीय खण्ड ॥

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो

मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं

ता अमृता आपः ॥ ३.३.१॥

तथा ये जो इसकी पश्चिम ओर की रश्मियाँ हैं वे ही इसकी पश्चिमीय मधुनाड़ियाँ हैं । सामश्रुतियाँ ही मधुकर हैं, सामवेद ही पुष्प है तथा वह अमृत ही आप है ।1।

तानि वा एतानि सामान्येतꣳ

सामवेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं

वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत ॥ ३.३.२॥

उन इन सामश्रुतियों ने इस सामवेद का अभिताप किया । उस अभितप्त साम से यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ ।2।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा

एतद्यदेतदादित्यस्य कृष्णꣳरूपम् ॥ ३.३.३॥

उस रस ने विशेषरूप से गमन किया । उसने जाकर आदित्य के पश्चिम भाग में आश्रय लिया । यह जो आदित्य का कृष्ण तेज है यह वही है ।3।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो

मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत

इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ॥ ३.४.१॥

तथा ये जो इसकी उत्तर दिशा की रश्मियाँ हैं वे ही इसकी उत्तर दिशा की मधुनाड़ियाँ हैं । अथर्वांगिरस श्रुतियाँ ही मधुकर हैं, इतिहास-पुराण ही पुष्प है तथा वह अमृत ही आप है ।1।

ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपूराणमभ्यतपꣳ

स्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियां

वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत ॥ ३.४.२॥

उन इन अथर्वांगिरस श्रुतियों ने इस इतिहास-पुराण का अभिताप किया । उस अभितप्त इतिहास-पुराण ही से यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ ।2।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा

एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णꣳरूपम् ॥ ३.४.३॥

उस रस ने विशेषरूप से गमन किया। उसने जाकर आदित्य के उत्तर भाग में आश्रय लिया। यह जो आदित्य का अत्यन्त कृष्णरूप है यह वही है ।3।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ पञ्चम खण्ड ॥

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवादेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः ॥ ३.५.१॥

तथा ये जो इसकी उर्ध्व रश्मियाँ हैं वे ही इसकी उर्ध्व मधुनाड़ियाँ हैं। गुह्य आदेश ही मधुकर हैं, ब्रह्म ही पुष्प है तथा वह अमृत ही आप है ।1।

ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपꣳ स्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत ॥ ३.५.२॥

उन इन गुह्य आदेशों ने ही इस ब्रह्म का अभिताप किया। उस अभितप्त ब्रह्म से ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ ।2।

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा

एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥ ३.५.३॥

उस रस ने विशेषरूप से गमन किया । उसने जाकर आदित्य के उर्ध्व भाग में आश्रय लिया । यह जो आदित्य के मध्य में क्षुब्ध-सा होता है यह वही है ।3।

ते वा एते रसाना॒ꣳरसा वेदा हि रसास्तेषामेते

रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा

ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥ ३.५.४॥

वे ये ही रसों के रस हैं, वेद ही रस हैं और ये उनके भी रस हैं । वे ही ये अमृतों के अमृत हैं- वेद ही अमृत हैं और ये उनके भी अमृत हैं ।4।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

॥ षष्ठ खण्ड ॥

तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै

देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा

तृप्यन्ति ॥ ३.६.१॥

इनमें जो पहला अमृत है उससे वसुगण अग्निप्रधान होकर जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते ही हैं, वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाते हैं।1।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ ३.६.२॥

वे देवगण इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और फिर इसी से उत्साहित होते हैं।2।

स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाग्निनैव

मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स य एतदेव

रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३.६.३॥

वह, जो इस प्रकार इस अमृत को जानता है वह वसुओं में ही कोई एक होकर अग्नि की ही प्रधानता से इसे देखकर तृप्त हो जाता है । वह इस रूप को लक्ष्य करके ही उदासीन हो जाता है और इस रूप से ही उत्साहित होता है ।3।

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता

वसूनामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता ॥ ३.६.४॥

जब तक आदित्य पूर्व दिशा से उदित होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता है तब तक वह वसुओं के आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है ।4।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

॥ सप्तम खण्ड ॥

अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण
मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं
दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ ३.७.१॥

अब, जो दूसरा अमृत है, रुद्रगण इन्द्रप्रधान होकर उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते ही हैं, वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाते हैं।1।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ ३.७.२॥

वे इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और फिर इसी से उद्यमशील होते हैं।2।

स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव
मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव
रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३.७.३॥

वह, जो इस प्रकार इस अमृत को जानता है वह रुद्रों में ही कोई एक होकर इन्द्र की ही प्रधानता से इसे देखकर तृप्त हो जाता है । वह इस रूप को लक्ष्य करके ही उदासीन हो जाता है और इस रूप से ही उद्यमशील होता है ।3।

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता

द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता ॥ ३.७.४॥

जब तक आदित्य पूर्व दिशा से उदित होता है और पश्चिम दिशा में अस्त होता है, उससे दोगुने समय तक वह दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है । इतने समयपर्यन्त वह रुद्रों के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है ।4।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

॥ अष्टम खण्ड ॥

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन

मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं

दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ ३.८.१॥

तदनन्तर, जो तीसरा अमृत है, अदित्यगण वरुणप्रधान होकर उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते ही हैं, वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाते हैं ।1।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ ३.८.२॥

वे इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और फिर इसी से उद्यमशील हो जाते हैं ।2।

स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव

मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव

रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३.८.३॥

वह, जो इस प्रकार इस अमृत को जानता है आदित्यों में ही कोई एक होकर वरुण की ही प्रधानता से इस अमृत देखकर तृप्त हो जाता है । वह इस रूप से ही उदासीन हो जाता है और इस रूप से ही उद्यमशील हो जाता है ।3।

स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता
द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेतादित्यानामेव
तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता ॥ ३.८.४॥

वह आदित्य जितने समय तक दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है, उससे दोगुने समय तक पश्चिम से उदित होता है और पूर्व में अस्त होता रहता है । इतने समय तक वह आदित्यों के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है ।4।

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

॥ नवम खण्ड ॥

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन
मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं
दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ ३.९.१॥

तथा जो चौथा अमृत है, मरुद्गण सोमप्रधान होकर उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं । देवगण न तो खाते हैं और न पीते ही हैं, वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाते हैं ।1।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ ३.९.२॥

वे इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और फिर इसी से उद्यमशील हो जाते हैं ।2।

स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं
दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति
॥३.९.३॥

वह, जो इस प्रकार इस अमृत को जानता है, मरुतों में ही कोई एक होकर सोम की ही प्रधानता से इस अमृत देखकर तृप्त हो जाता है । वह इस रूप से ही उदासीन हो जाता है और इस रूप से ही उद्यमशील हो जाता है ।3।

स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता

द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव

तावदाधिपत्य्ँस्वाराज्यं पर्येता ॥ ३.९.४॥

वह आदित्य जितने समय तक पश्चिम से उदित होता है और पूर्व में अस्त होता है, उससे दोगुने समय तक उत्तर से उदित होता है और दक्षिण में अस्त होता रहता है। इतने समय तक वह मरुद्गण के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है।4।

॥ इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशम खण्ड ॥

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा
मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं
दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ ३.१०.१॥

तथा जो पाँचवाँ अमृत है, साध्यगण ब्रह्मा की प्रधानता से उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते ही हैं, वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाते हैं ।1।

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ ३.१०.२॥

वे इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और फिर इसी से उद्यमशील हो जाते हैं ।2।

स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा
ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव

रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३.१०.३॥

वह, जो इस प्रकार इस अमृत को जानता है साध्यगण में ही कोई एक होकर ब्रह्मा की ही प्रधानता से इस अमृत देखकर तृप्त हो जाता है। वह इस रूप को लक्ष्य करके ही उदासीन होता है और इस रूप से ही उद्यमशील हो जाता है।3।

स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता

द्विस्तावदूर्ध्वं उदेतार्वागस्तमेता साध्यानामेव

तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता ॥ ३.१०.४॥

वह आदित्य जितने समय तक उत्तर से उदित होता है और दक्षिण में अस्त होता है, उससे दोगुने समय तक ऊपर की ओर उदित होता है और नीचे की ओर अस्त होता है। इतने समय तक वह साध्यों के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है।4।

॥ इति दशमः खण्डः ॥

॥ एकादश खण्ड ॥

अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव

मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः ॥ ३.११.१॥

फिर उसके पश्चात् वह उर्ध्वगत होकर उदित होने पर फिर न तो उदित होगा और न अस्त ही होगा, बल्कि अकेला ही मध्य में स्थित रहेगा । उसके विषय मे यह श्लोक है ।1।

न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन ।

देवास्तेनाहꣳसत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥ ३.११.२॥

वहाँ निश्चय ही ऐसा नहीं होता । वहाँ न कभी अस्त होता है और न उदय होता है । हे देवगण ! इस सत्य के द्वारा में ब्रह्म से विरुद्ध न होऊँ ।2।

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै

भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥ ३.११.३॥

जो इस प्रकार इस ब्रह्मोपनिषद को जनता है उसके लिए न तो उदित होता है और न अस्त होता है । उसके लिए सर्वदा दिन ही रहता है ।3।

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे

मनुः प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय

पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ३.११.४॥

वह यह मधुज्ञान ब्रह्मा ने विराट् प्रजापति से कहा था, प्रजापति ने मनु से कहा और मनु ने प्रजावर्ग के प्रति कहा । तथा अपने ज्येष्ठ पुत्र अरुणनन्दन उद्दालक को उसके पिता ने इस ब्रह्मविज्ञान का उपदेश दिया था ।4।

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म

प्रब्रूयात्प्रणाय्याय वान्तेवासिने ॥ ३.११.५॥

अतः इस ब्रह्मविज्ञान का पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र को अथवा सुयोग्य शिष्य को उपदेश करे ।5।

नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां

धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव

ततो भूय इति ॥ ३.११.६॥

किसी दूसरे को नहीं बतलावे, यद्यपि इस आचार्य को यह समुद्रपरिवेष्टित और धन से परिपूर्ण सारी पृथ्वी दे । उससे यही बढ़कर है, यही बढ़कर है ।6।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

॥ द्वादश खण्ड ॥

गायत्री वा ईदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किं च वाग्वै गायत्री

वाग्वा इदꣳ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥ ३.१२.१॥

गायत्री ही ये समस्त भूत हैं । जो कुछ भी ये स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं वे गायत्री ही हैं । वाक् ही गायत्री है और वाक् ही ये सब प्राणी हैं क्योंकि यही गायत्री उनका गान करती है और उनकी रक्षा करती है ।1।

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याꣳ हीदꣳ

सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते ॥ ३.१२.२॥

जो वह गायत्री है वह यही है, जो कि यह पृथ्वी है, क्योंकि इसी में ये सब भूत स्थित हैं और इसी का वे कभी अतिक्रमण नहीं करते ।2।

या वै सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे

शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव

नातिशीयन्ते ॥ ३.१२.३॥

जो भी यह पृथ्वी है वह यही है, जो कि इस पुरुष में शरीर है, क्योंकि इसी में ये प्राण स्थित हैं और इसी को वे कभी नहीं छोड़ते ।3।

यद्वै तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः

पुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव

नातिशीयन्ते ॥ ३.१२.४॥

जो भी इस पुरुष में शरीर है वह यही है, जो कि इस अन्तःपुरुष में हृदय है, क्योंकि इसी में ये प्राण प्रतिष्ठित हैं और इसी का अतिक्रमण नहीं करते ।4।

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम्

॥ ३.१२.५॥

वह यह गायत्री चार चरणों वाली और छः प्रकार की है । यह मन्त्रों द्वारा भी प्रकाशित किया गया है ।5।

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाꣳश्च पूरुषः ।

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ॥ ३.१२.६॥

इतनी ही इसकी महिमा है, तथा पुरुष इससे भी उत्कृष्ट है । सम्पूर्ण भूत इसका एक पाद हैं और इसका त्रिपाद अमृत प्रकाशमय स्वात्मा में स्थित है ।6।

यद्वै तद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योयं बहिर्धा

पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः ॥ ३.१२.७॥

जो भी वह ब्रह्म है वह यही है, जो कि यह पुरुष से बाहर आकाश है, और जो भी यह पुरुष से बाहर आकाश है ।7।

अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष अकाशो यो वै सोऽन्तः

पुरुष आकाशः ॥ ३.१२.८॥

वह यही है, जो कि यह पुरुष के भीतर आकाश है, और जो भी यह पुरुष के भीतर आकाश है ।8।

अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेतत्पूर्णमप्रवर्ति

पूर्णमप्रवर्तिनीꣳश्रियं लभते य एवं वेद ॥ ३.१२.९॥

वह यही है जो हृदय के अन्तर्गत आकाश है । वह यह हृदयाकाश पूर्ण और कहीं भी प्रवृत्त न होने वाला है । जो पुरुष ऐसा जानता है वह पूर्ण और कहीं प्रवृत्त न होने वाली सम्पत्ति प्राप्त करता है ।9।

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

॥ त्रयोदश खण्ड ॥

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः

स योऽस्य प्राङ्सुषिः स प्राणस्तच्चक्षुः

स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽन्नाद्यमित्युपासीत

तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३.१३.१॥

उस इस प्रसिद्ध हृदय के पाँच देवसुषि हैं । इसका जो पूर्वदिशावर्ती सुषि है वह प्राण है, वह चक्षु है, वह आदित्य है, वही यह तेज और अन्नाद्य है-इस प्रकार उपासना करे । जो इस प्रकार जानता है वह तेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है ।1।

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रꣳ

स चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत

श्रीमान्यशस्वी भवति य एवं वेद ॥ ३.१३.२॥

तथा इसका जो दक्षिण छिद्र है वह व्यान है, वह श्रोत्र है, वह चन्द्रमा है और वही यह श्री एवं यश है- इस प्रकार उसकी उपासना करे । जो ऐसा जानता है वह श्रीमान् और यशस्वी होता है ।2।

अथ योऽस्य प्रत्यङ्सुषिः सोऽपानः

सा वाक्सोऽग्निस्तदेतद्ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपासीत

ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३.१३.३॥

तथा इसका जो पश्चिम छिद्र है वह अपान है, वह वाक् है, वह अग्नि है और वही वह ब्रह्मतेज एवं अन्नाद्य है- इस प्रकार उसकी उपासना करे । जो ऐसा जानता है वह ब्रह्मतेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है ।3।

अथ योऽस्योदङ्सुषिः स समानस्तन्मनः

स पर्जन्यस्तदेतत्कीर्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत

कीर्तिमान्व्युष्टिमान्भवति य एवं वेद ॥ ३.१३.४॥

तथा इसका जो उत्तरीय छिद्र है वह समान है, वह मन है, वह मेघ है और वही यह कीर्ति एवं व्युष्टि है- इस प्रकार उसकी उपासना करे । जो ऐसा जानता है वह कीर्तिमान और व्युष्टिमान होता है ।4।

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः

स आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी

महस्वान्भवति य एवं वेद ॥ ३.१३.५॥

तथा इसका जो उर्ध्व छिद्र है वह उदान है, वह वायु है, वह आकाश है और वही यह ओज एवं महः है- इस प्रकार उसकी उपासना करे । जो ऐसा जानता है वह ओजस्वी और महास्वान् होता है ।5।

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य

द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य

लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते

स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य

लोकस्य द्वारपान्वेद ॥ ३.१३.६॥

वे पाँच ब्रह्म पुरुष स्वर्गलोक के द्वारपाल हैं । वह जो कोई भी स्वर्गलोक के द्वारपाल इन पाँच ब्रह्मपुरुषों को जानता है उसके कुल में वीर उत्पन्न होता है । जो इस प्रकार स्वर्गलोक के द्वारपाल इन पाँच पुरुषों को जानता है वह स्वर्गलोक को प्राप्त होता है ।6।

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु

सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव

तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिः ॥ ३.१३.७॥

तथा इस द्युलोक से परे जो परमज्योति विश्व के पृष्ठ पर यानी सबके ऊपर, जिनसे उत्तम कोई दूसरा लोक नहीं है ऐसे उत्तम लोक में प्रकाशित हो रही है वह निश्चय यही है जो कि पुरुष के भीतर ज्योति है ।7।

तस्यैषा दृष्टिर्यत्रितदस्मिञ्छरीरे सꣳस्पर्शेनोष्णिमानं

विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णाविपिगृह्य निनदमिव

नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद्दृष्टं च
श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद

य एवं वेद ॥ ३.१३.८॥

उसका यही दर्शनोपाय है जबकि मनुष्य इस शरीर में स्पर्श द्वारा उष्णता को जानता है तथा यही उसका श्रवणोपाय है जबकि यह कानों को मूँदकर रथ के घोष, बैल के डकारने और जलते हुए अग्नि के शब्द के समान श्रवण करता है, वह यह ज्योति दृष्ट और श्रुत है-इस प्रकार इसकी उपासना करे । जो उपासक ऐसा जानता है वह दर्शनीय और विश्रुत होता है ।8।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

॥ चतुर्दश खण्ड ॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ।

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिꣳल्लोके

पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत

॥ ३.१४.१॥

यह सारा जगत निश्चय ब्रह्म ही है, यह उसी से उत्पन्न होने वाला, उसी में लीन होने वाला और उसी में चेष्टा करने वाला है- इस प्रकार शान्त होकर उपासना करे, क्योंकि पुरुष निश्चय ही क्रतुमय- निश्चयात्मक है, इस लोक में पुरुष जैसे निश्चय वाला होता है वैसा ही यहाँ से मरकर जाने पर होता है । अतः उस पुरुष को निश्चय करना चाहिए ।1।

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प

आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः

सर्वमिदमभ्यत्तोऽवाक्यनादरः ॥ ३.१४.२॥

वह ब्रह्म मनोमय, प्राणशरीर, प्रकाशस्वरूप, सत्यसंकल्प, आकाशशरीर, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, इस सम्पूर्ण जगत को सब ओर से व्याप्त करने वाला, वाग्-रहित और सम्भ्रमशून्य है ।2।

एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा
सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वैष
म आत्मान्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या
ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो
लोकेभ्यः ॥ ३.१४.३॥

हृदयकमल के भीतर यह मेरा आत्मा धान से, यव से, सरसों से, श्यामाक से अथवा श्यामाकतण्डुल से भी सूक्ष्म है तथा हृदयकमल के भीतर यह मेरा आत्मा पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक अथवा इन सब लोकों की अपेक्षा भी बड़ा है ।3।

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः
सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्मान्तर्हृदय

एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति यस्य स्यादद्धा
न विचिकित्सास्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः
॥ ३.१४.४ ॥

जो सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, इस सबको सब ओर से व्याप्त करने वाला, वाक्-रहित और सम्भ्रमशून्य है वह मेरा आत्मा हृदयकमल के मध्य में स्थित है । यही ब्रह्म है, इस शरीर से मरकर जाने पर मैं उसी को प्राप्त होऊँगा । ऐसा जिसका निश्चय है और जिसे इस विषय मे कोई संदेह भी नहीं है- ऐसा शाण्डिल्य ने कहा है, शाण्डिल्य ने कहा है ।4।

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

॥ पञ्चदश खण्ड ॥

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो
ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलꣳ स एष कोशो
वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिदꣳ श्रितम् ॥ ३.१५.१॥

अन्तरिक्ष जिसका उदर है वह कोश प्रथ्वीरूप मूलवाला है । वह जीर्ण नहीं होता । दिशाएँ इसके कोण हैं, आकाश ऊपर का छिद्र है, वह यह कोश वसुधान है । उसी में यह सारा विश्व स्थित है ।1।

तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम सहमाना नाम दक्षिणा
राज्ञी नाम प्रतीची सुभूता नामोदीची तासां
वायुर्वत्सः स य एतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद न
पुत्ररोदꣳ रोदिति सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं
वेद मा पुत्ररोदꣳरुदम् ॥ ३.१५.२॥

उस कोश की पूर्व दिशा 'जुहू' नाम वाली है, दक्षिण दिशा 'सहमाना' नाम की है, पश्चिम दिशा 'राज्ञी' नाम वाली है तथा उत्तर दिशा 'सुभूता' नाम की है । उन दिशाओं का वायु वत्स है । वह, जो इस प्रकार इस वायु को दिशाओं के वत्सरूप से जानता है, पुत्र के निमत्त से रोदन

नहीं करता । वह मैं इस प्रकार इस वायु को दिशाओं के वत्सरूप से जनता हूँ, अतः मैं पुत्र के कारण न रोऊँ ।2।

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनामुनामुना

प्राणं प्रपद्येऽमुनामुनामुना भूः प्रपद्येऽमुनामुनामुना

भुवः प्रपद्येऽमुनामुनामुना स्वः प्रपद्येऽमुनामुनामुना

॥ ३.१५.३ ॥

मैं अमुक-अमुक-अमुक के सहित अविनाशी कोश की शरण हूँ अमुक-अमुक-अमुक के सहित प्राण की शरण हूँ, अमुक-अमुक-अमुक के सहित भूः की शरण हूँ, अमुक-अमुक-अमुक के सहित भुवः की शरण हूँ, अमुक-अमुक-अमुक के सहित स्वः की शरण हूँ ।3।

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदꣳ सर्वं

भूतं यदिदं किंच तमेव तत्प्रापत्सि ॥ ३.१५.४ ॥

उस, मैंने जो कहा कि 'मैं प्राण की शरण हूँ' सो यह जो कुछ सम्पूर्ण भूत समुदाय है प्राण ही है, उसी की मैं शरण हूँ ।4।

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं

प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ३.१५.५॥

तथा मैंने जो कहा कि 'मैं भूः की शरण हूँ' इससे मैंने यही कहा कि 'मैं पृथ्वी की शरण हूँ, अन्तरिक्ष की शरण हूँ और द्युलोक की शरण हूँ' ।5।

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं प्रपद्ये वायुं

प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ३.१५.६॥

फिर मैंने जो कहा कि 'मैं भुवः की शरण हूँ' इससे मैंने यही कहा कि 'मैं अग्नि की शरण हूँ, वायु की शरण हूँ और आदित्य की शरण हूँ' ।6।

अथ यदवोचꣳस्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये

सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम् ॥ ३.१५.७॥

तथा मैंने जो कहा कि 'मैं स्वः की शरण हूँ' इससे मैंने यही कहा कि 'मैं ऋग्वेद की शरण हूँ, यजुर्वेद की शरण हूँ और सामवेद की शरण हूँ' यही मैंने कहा है, यही मैंने कहा है ।7।

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

॥ षोडश खण्ड ॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंꣳशति वर्षाणि
तत्प्रातःसवनं चतुर्विंꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं
प्रातःसवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव
एते हीदꣳसर्वं वासयन्ति ॥ ३.१६.१॥

निश्चय पुरुष ही यज्ञ है । उसके जो चौबीस वर्ष हैं वे प्रातःसवन हैं । गायत्री चौबीस अक्षरों वाली है, और प्रातःसवन गायत्री छन्द से सम्बद्ध है, । उस इस प्रातःसवन के वसुगण अनुगत हैं । प्राण ही वसु हैं क्योंकि ये ही इस सबको बसाए हुए हैं ।1।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा
वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यंदिनꣳसवनमनुसंतनुतेति
माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव
तत एत्यगदो ह भवति ॥ ३.१६.२॥

यदि इस प्रातःसवनसम्पन्न आयु में उसे कोई रोग आदि कष्ट पहुँचाये तो उसे इस प्रकार कहना चाहिए, 'हे प्राणरूप वसुगण ! मेरे इस प्रातःसवन को माध्यन्दिनसवन के साथ एकरूप कर दो, यज्ञस्वरूप मैं आप प्राणरूप वसुओं के मध्य में विलुप्त न होऊँ' तब उस कष्ट से मुक्त होकर वह नीरोग हो जाता है ।2।

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनꣳ

सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप्त्रैष्टुभं

माध्यंदिनꣳसवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा

वाव रुद्रा एते हीदꣳसर्वꣳरोदयन्ति ॥ ३.१६.३॥

इसके पश्चात् जो चवालीस वर्ष है, माध्यन्दिनसवन हैं । त्रिष्टुप छन्द से सम्बद्ध है । उस माध्यन्दिनसवन के रुद्रगण अनुगत हैं । प्राण ही रुद्रगण हैं, क्योंकि ये ही इस सम्पूर्ण प्राणीसमुदाय को रुलाते हैं ।3।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा

इदं मे माध्यंदिनꣳसवनं तृतीयसवनमनुसंतनुतेति

माहं प्राणाना꣡रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव

तत एत्यगदो ह भवति ॥ ३.१६.४॥

यदि उस आयु में कोई संतप्त करे तो उसे इस प्रकार कहना चाहिए, 'हे प्राणरूप रुद्रगण ! मेरे इस मध्याह्नकालिक सवन को तृतीय सवन के साथ एकीभूत कर दो । यज्ञस्वरूप मैं प्राणरूप रुद्रों के मध्य में कभी विच्छिन्न न होऊँ' । ऐसा कहने से वह उस कष्ट से छूट जाता है और नीरोग हो जाता है ।4।

अथ यान्यष्टाचत्वारि꣡शद्वर्षाणि

तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारि꣡शदक्षरा

जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः

प्राणा वावादित्या एते हीद꣡सर्वमाददते ॥ ३.१६.५॥

इसके पश्चात् जो अड़तालीस वर्ष हैं, वे तृतीय सवन हैं । जगती छन्द अड़तालीस अक्षरों वाला है तथा तृतीय सवन जगती छन्द से सम्बन्ध रखता है । इस सवन के अदित्यगण अनुगत हैं । प्राण ही आदित्य हैं, क्योंकि वे ही सम्पूर्ण शब्दादि विषयसमूह को ग्रहण करते हैं ।5।

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा

अदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माहं

प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव

तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ३.१६.६॥

उसको यदि इस आयु में कोई सन्तप्त करे तो उसे इस प्रकार कहना चाहिए, 'हे प्राणरूप अदित्यगण ! मेरे इस तृतीय सवन को आयु के साथ एकीभूत कर दो । यज्ञस्वरूप मैं प्राणरूप आदित्यों के मध्य में विनष्ट न होऊँ' । ऐसा कहने से वह उस कष्ट से मुक्त होकर नीरोग हो जाता है ।6।

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः

स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति

स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्प्र ह षोडशं

वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥ ३.१६.७॥

इस प्रसिद्ध विद्या को जानने वाले ऐतरेय महिदास ने कहा था- 'तो मुझे क्यों कष्ट देता है, जो मैं कि इस रोग द्वारा मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकता' । वह एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहा था, जो इस प्रकार जानता है वह एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहता है ।7।

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

॥ सप्तदश खण्ड ॥

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य

दीक्षाः ॥ ३.१७.१॥

वह जो भोजन करने की इच्छा करता है, जो पीने की इच्छा करता है और जो रममाण नहीं होता- वही इसकी दीक्षा है ।1।

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति ॥ ३.१७.२॥

फिर वह जो खाता है, जो पीता है और जो रति का अनुभव करता है- वह उपसदों की सदृशता को प्राप्त होता है ।2।

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव

तदेति ॥ ३.१७.३॥

तथा वह जो हँसता है, जो भक्षण करता है और जो मैथुन करता है- वे सब स्तुतशस्त्र की ही समानता को प्राप्त होते हैं ।3।

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिꣳसा सत्यवचनमिति

ता अस्य दक्षिणाः ॥ ३.१७.४॥

तथा जो तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्यवचन हैं, वे ही इसकी दक्षिणा हैं ।4।

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य

तन्मरणमेवावभृथः ॥ ३.१७.५॥

इसीसे कहते हैं कि 'प्रसूता होगी' अथवा 'प्रसूता हुई' वह इसका पुनर्जन्म ही है तथा मरण ही अवभृथस्नान है ।5।

तद्धैतद्घोर् आङ्गिरसः कृष्णाय

देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव

सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि

प्राणसꣳशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥ ३.१७.६॥

घोर अंगिरस ऋषि ने देवकीपुत्र कृष्ण को यह यज्ञदर्शन सुनाकर, जिससे कि वह अन्य विद्याओं के विषय में तृष्णाहीन हो गया था, कहा-'उसे अन्तकाल में इन तीन मन्त्रों का जाप करना चाहिए- तू अक्षित है,- अच्युत है,- और अति सूक्ष्म प्राण है' । तथा इस विषय में दो ऋचाएँ हैं ।6।

आदित्प्रत्नस्य रेतसः ।

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरꣳस्वः

पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म

ज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति ॥ ३.१७.७॥

'पुरातन कारण का प्रकाश देखते हैं, यह सर्वत्र व्याप्त प्रकाश, जो परब्रह्म में स्थित परमतेज देदीप्यमान है, उसका है' । 'अज्ञानरूप अन्धकार से अतीत उत्कृष्ट ज्योति को देखते हुए तथा आत्मीय उत्कृष्ट

तेज को देखते हुए हम सम्पूर्ण देवों में प्रकाशमान सर्वोत्तम ज्योतिःस्वरूप सूर्य को प्राप्त हुए' ।7।

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

अष्टादश खण्ड

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो

ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च

॥ ३.१८.१॥

'मन ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करे । यह अध्यात्मदृष्टि है तथा 'आकाश ब्रह्म है' यह अधिदैवतदृष्टि है । इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों का उपदेश किया गया ।1।

तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्म वाक्पादः प्राणः पादश्चक्षुः

पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमग्निः

पादो वायुः पादा अदित्यः पादो दिशः पाद

इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च

॥ ३.१८.२॥

वह यह ब्रह्म चार पादों वाला है । वाक् पाद है, प्राण पाद है, चक्षु पाद है और श्रोत्र पाद है । यह अध्यात्म है । अब अधिदैवत कहते हैं- अग्नि पाद है, वायु पाद है, आदित्य पाद है और दिशाएँ पाद हैं । इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों का उपदेश किया गया ।2।

वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सोऽग्निना ज्योतिषा

भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा

ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३.१८.३॥

वाक् ही ब्रह्म का चौथा पाद है, वह अग्निरूप ज्योति से दीप्त होता है और तपता है । जो ऐसा जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज के कारण देदीप्यमान होता और तपता है ।3।

प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा

भाति च तपति च् भाति च तपति च कीर्त्या यशसा

ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३.१८.४॥

प्राण ही ब्रह्म का चौथा पाद है, वह वायुरूप ज्योति से दीप्त होता है और तपता है। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज के कारण देदीप्यमान होता और तपता है।4।

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स आदित्येन ज्योतिषा

भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा

ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३.१८.५॥

चक्षु ही ब्रह्म का चौथा पाद है, वह अदित्यरूप ज्योति से दीप्त होता है और तपता है। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज के कारण देदीप्यमान होता और तपता है।5।

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स दिग्भिर्ज्योतिषा

भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा

ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद य एवं वेद ॥ ३.१८.६॥

श्रोत्र ही ब्रह्म का चौथा पाद है, वह दिशारूप ज्योति से दीप्त होता है और तपता है । जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज के कारण देदीप्यमान होता और तपता है ।6।

॥ इति अष्टादशः खण्डः ॥

एकोनविंश खण्ड

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र
आसीत् । तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्तत
तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्डकपाले
रजतं च सुवर्णं चाभवताम् ॥ ३.१९.१॥

आदित्य ब्रह्म है- ऐसा उपदेश है, उसी की व्याख्या की जाती है । पहले यह असत् ही था । वह सत् हुआ । वह अंकुरित हुआ । वह एक अण्डे में परिणत हो गया । वह एक वर्ष पर्यन्त उसी प्रकार पड़ा रहा । फिर वह फूटा, वे दोनों अण्डे के खण्ड रजत और सुवर्णरूप हो गए ।1।

तद्यद्रजतꣳ सेयं पृथिवी यत्सुवर्णꣳ सा द्यौर्यज्जरायु
ते पर्वता यदुल्बꣳ समेघो नीहारो या धमनयस्ता
नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳ स समुद्रः ॥ ३.१९.२॥

उनमें जो खण्ड रजत हुआ वह पृथ्वी है और जो सुवर्ण हुआ वह द्युलोक है । उस अण्डे का जो जरायु था वे पर्वत हैं, जो उल्ब था वह मेघों के सहित कुहरा है, जो धमनियाँ थीं वे नदियाँ हैं तथा जो वस्तिगत जल था वह समुद्र है ।2।

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा

उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च

कामास्तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा

उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः

॥ ३.१९.३ ॥

फिर उससे जो उत्पन्न हुआ वह आदित्य है । उसके उत्पन्न होते ही बड़े ज़ोरों का शब्द हुआ तथा उसी से सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग भी उत्पन्न हुए हैं । इसीसे उसका उदय और अस्त होने पर दीर्घ शब्दयुक्त घोष उत्पन्न होते है तथा सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग भी उत्पन्न होते हैं ।3।

स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह

यदेनꣳ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च

निम्रेडेरन्निम्रेडेरन् ॥ ३.१९.४॥

वह जो इस प्रकार जानने वाला होकर आदित्य की 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, उसके समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आते हैं और उसे सुख देते हैं, सुख देते हैं ।4।

॥ इति एकोनविंशः खण्डः ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ चतुर्थोऽध्यायः चतुर्थ अध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस

स ह सर्वत आवसथान्मापयांचक्रे सर्वत एव

मेऽन्नमत्स्यन्तीति ॥ ४.१.१॥

जानश्रुत की संतान-परम्परा में उत्पन्न एवं उसके पुत्र का पौत्र श्रद्धापूर्वक देनेवाला एवं बहुत दान करनेवाला था और उसके यहाँ बहुत सा अन्न पकाया जाता था । उसने इस आशय से कि लोग सब जगह मेरा ही अन्न खाएँगे, सर्वत्र निवासस्थान बनवा दिए थे ।1।

अथ हꣳसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवꣳ हꣳ सोहꣳ समभ्युवाद

हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य

समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षी स्तत्त्वा

मा प्रधाक्षीरिति ॥ ४.१.२॥

उसी समय रात्रि में उधर से हंस उड़कर गए । उनमें से एक हंस ने दूसरे हंस से कहा- 'अरे ओ भल्लाक्ष ! ओ भल्लाक्ष ! देख, जानश्रुति पौत्रायण का तेज द्‌युलोक के समान फैला हुआ है, तू उसका स्पर्श न कर, वह तुझे भस्म न कर डाले' ।2।

तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एनमेतत्सन्तꣳ सयुग्वानमिव

रैक्कमात्थेति यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्क इति ॥ ४.१.३॥

उससे दूसरे हंस ने कहा- 'अरे ! तू किस महत्व से रहने वाले इस राजा के प्रति सम्मानित वचन कह रहा है ? क्या तू इसे गाड़ी वाले रैक्क के समान बतलाता है ?' इस पर उसने पूछा- 'यह जो गाड़ीवाला रैक्क है, कैसा है ?' ।3।

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं

तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद

यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४.१.४॥

जिस प्रकार कृतनामक पासे के द्वारा जीतने वाले पुरुष के अधीन उससे निम्न श्रेणी के सारे पासे हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रजा जो कुछ सत्कर्म करती है वह सब उस रैक्क को प्राप्त हो जाता है । जो बात वह रैक्क जानता है उसे जो कोई भी जानता है उसके विषय में मैंने भी यह कह दिया ।4।

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव

स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव

रैक्कमात्थेति यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्क इति ॥ ४.१.५॥

इस बात को जानश्रुति पौत्रायण ने सुन लिया । सुबह उठते ही उसने सेवक से कहा- 'अरे भाई ! तू गाड़ीवाले रैक्क के समान मेरी स्तुति क्या करता है' । इस पर सेवक ने पूछा- 'यह जो गाड़ीवाला रैक्क है, कैसा है ?' ।5।

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं
तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद
यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४.१.६॥

राजा ने कहा- 'जिस प्रकार कृतनामक पासे के द्वारा जीतने वाले पुरुष के अधीन उससे निम्न श्रेणी के सारे पासे हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रजा जो कुछ सत्कर्म करती है वह सब उस रैक्व को प्राप्त हो जाता है आठ जो बात वह रैक्व जानता है उसे जो कोई भी जानता है उसके विषय में मैंने भी यह कह दिया ।6।

स ह क्षत्तान्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तꣳ होवाच
यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्च्छेति ॥ ४.१.७॥

वह सेवक उसकी खोज करने के अनन्तर 'मैं उसे नहीं पा सका' ऐसा कहता हुआ लौट आया । तब उससे राजा ने कहा- 'अरे ! जहाँ ब्राह्मण की खोज की जाती है वहाँ उसके पास जा' ।7।

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश

तꣳ हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्क

इत्यहꣳ ह्यरा३ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताविदमिति

प्रत्येयाय ॥ ४.१.८ ॥

उसने एक छकड़े के नीचे खाज खुजलाते हुए रैक्क को देखा । वह उसके पास बैठ गया और बोला- 'भगवन् ! क्या आप ही गाड़ी वाले रैक्क हैं ?' तब रैक्क ने स्वीकार किया- 'अरे ! हाँ, मैं ही हूँ' । तब वह सेवक यह समझकर की मैंने उसे पहचान लिया है, लौट आया ।8।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां

निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳ हाभ्युवाद

॥ ४.२.१॥

तब वह जानश्रुति पौत्रायण छः सौ गौएँ, एक हार और एक खच्चरियों से जुता हुआ रथ लेकर उसके पास आया और बोला ।1।

रैक्केमानि षट्शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथोऽनु

म एतां भगवो देवताꣳ शाधि यां देवतामुपास्स इति

॥ ४.२.२॥

'हे रैक्क ! ये छः सौ गौएँ, यह हार और यह खच्चरियों से जुता हुआ रथ में आपके लिए लाया हूँ । हे भगवन् ! आप मुझे उस देवता का उपदेश दीजिए, जिसकी आप उपासना करते हैं ।2।

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह

गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः

सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय

प्रतिचक्रमे ॥ ४.२.३॥

उस राजा से दूसरे रैक्क ने कहा- 'ऐ शूद्र ! गौओं सहित यह हारयुक्त रथ तेरे पास ही रहे' । तब वह जानश्रुति पौत्रायण एक सहस्त्र गौएँ एक हार और खच्चरियों से जुता हुआ रथ और अपनी कन्या- इतना धन लेकर फिर उसके पास आया ।3।

तꣳ हाभ्युवाद रैक्केदꣳ सहस्रं गवामयं

निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायायं ग्रामो

यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति ॥ ४.२.४ ॥

और उस रैक्क से कहा- 'हे रैक्क ! ये एक सहस्त्र गौएँ, यह हार, यह खच्चरियों से जुता हुआ रथ, यह पत्नी और यह ग्राम जिसमें की आप हैं लीजिये और हे भगवन् ! मुझे अवश्य अनुशासित कीजिये' ।4।

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाजहारेमाः शूद्रानेनैव

मुखेनालापयिष्यथा इति ते हैते रैक्कपर्णा नाम

महावृषेषु यत्रास्मा उवास स तस्मै होवाच ॥ ४.२.५ ॥

तब उस राजकन्या के मुख को ही विद्याग्रहण का द्वार समझते हुए रैक्क ने कहा- 'अरे शूद्र ! तू ये गौएँ आदि लाया है सो ठीक है, तू इस विद्याग्रहण के द्वार से ही मुझसे भाषण कराता है '। इस प्रकार जहाँ वह रैक्क रहता था वे रैक्कपर्ण नामक ग्राम महावृषदेश में प्रसिद्ध हैं । तब उसने उससे कहा ।5।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ तृतीय खण्ड ॥

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति

यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति

वायुमेवाप्येति ॥ ४.३.१॥

वायु ही संवर्ग है। जब अग्नि बुझता है तो वायु में ही लीन होता है, जब सूर्य अस्त होता है तो वायु में ही लीन होता है और जब चन्द्रमा अस्त होता है तो वायु में ही लीन हो जाता है।1।

यदाप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति

वायुर्ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम् ॥ ४.३.२॥

जिस समय जल सूखता है वह वायु में ही लीन हो जाता है। वायु ही इन सब जलों को अपने में लीन कर लेता है। यह अधिदैवत दृष्टि है।2।

अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव

वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणꣳ श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो

ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इति ॥ ४.३.३॥

अब अध्यात्मदर्शन कहा जाता है- प्राण ही संवर्ग है। जिस समय वह पुरुष सोता है, प्राण को ही वाक् इन्द्रिय प्राप्त हो जाती है, प्राण को

ही चक्षु, प्राण को ही श्रोत्र और प्राण को ही मन प्राप्त हो जाता है, प्राण ही इन सबको अपने में लीन कर लेता है ।3।

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु

॥ ४.३.४॥

वे ये दो ही संवर्ग हैं- देवताओं में वायु और इन्द्रियों में प्राण ।4।

अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं

परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः

॥ ४.३.५॥

एक बार कपिगोत्रज शौनक और कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारी से, जब कि उन्हें भोजन परोसा जा रहा था, एक ब्रह्मचारी ने भिक्षा माँगी, किन्तु उन्होंने उसे भिक्षा न दी ।5।

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार

भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या

अभिप्रतारिन्बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा

एतन्न दत्तमिति ॥ ४.३.६॥

उसने कहा- भुवनों के रक्षक उस एक देव प्रजापति ने चार महात्माओं को ग्रस लिया है । हे कापेय ! हे अभिप्रतारिन् ! मनुष्य अनेक प्रकार से निवास करते हुए उस एक देव को नहीं देखते, तथा जिसके लिए यह अन्न है उसे ही नहीं दिया गया ।6।

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां

जनिता प्रजाना॰ हिरण्यद॰ष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य

महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं

ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति ॥ ४.३.७॥

उस वाक्य का कपिगोत्रोत्पन्न शौनक ने मनन किया और फिर उस ब्रह्मचारी के पास आकर कहा- 'जो देवताओं का आत्मा, प्रजाओं का उत्पत्तिकर्ता, हिरण्यदंष्ट्र, भक्षणशील और मेधावी है, जिसकी बड़ी महिमा कही गयी है, जो स्वयं दूसरों से न खाया जानेवाला और जो

वस्तुतः अन्न नहीं है उनको भी भक्षण कर जाता है, हे ब्रह्मचारिन् ! उसी की हम उपासना करते हैं । इस कहकर उसने सेवकों को आज्ञा दी कि इस ब्रह्मचारी को भिक्षा दो ।7।

तस्म उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश
सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतꣳ सैषा
विराडन्नादी तयेदꣳ सर्वं दृष्टꣳ सर्वमस्येदं दृष्टं
भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ४.३.८॥

तब उन्होंने उसे भिक्षा दे दी । वे ये (अग्न्यादि और वायु) पाँच (वागादि) से अन्य हैं तथा इनसे (वागादि और प्राण) ये पाँच अन्य हैं, इस प्रकार ये सब दस होते हैं । ये दस कृत हैं । अतः सम्पूर्ण दिशाओं में ये अन्न ही दस कृत हैं । यह विराट् ही अन्नादि है । उसके द्वारा यह सब देखा जाता है । जो ऐसा जानता है उसके द्वारा यह सब देख लिया जाता है और वह अन्न भक्षण करने वाला होता है ।8।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयांचक्रे

ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रो न्वहमस्मीति

॥ ४.४.१॥

जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता जबाला को सम्बोधित करके निवेदन किया- 'हे पूज्ये ! मैं ब्रह्मचर्य पूर्वक निवास करना चाहता हूँ मैं किस गोत्र वाला हूँ ?' ।1।

सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि

बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे

साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि

सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो

ब्रवीथा इति ॥ ४.४.२॥

उसने उससे कहा- 'हे तात ! तू जिस गोत्र वाला है उसे मैं नहीं जानती । पहले मैं पति के घर आये हुए बहुत से अतिथियों की सेवा टहल करने वाली परिचारिका थी । उन्हीं दिनों जब मैंने तुझे प्राप्त किया । अतः मैं यह नहीं जानती कि तू किस गोत्र वाला है ? मैं तो जबाला नाम वाली हूँ और तू सत्यकाम नाम वाला है । अतः तू अपने को 'सत्यकाम जाबाल' बतला देना' ।2।

स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति

वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥ ४.४.३॥

उसने हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर कहा- 'मैं पूज्य श्रीमान् के यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक वास करूँगा, इसी से आपकी सन्निधि में आया हूँ' ।3।

तꣳ होवाच किंगोत्रो नु सोम्यासीति स होवाच

नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरꣳ

सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचरिणी यौवने

त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु

नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहꣳ

सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४.४.४॥

उससे गौतम ने कहा- 'हे सौम्य ! तू किस गोत्र वाला है?' उसने कहा- 'भगवन् ! मैं जिस गोत्र वाला हूँ उसे नहीं जानता । मैंने माता से पूछा था । उसने मुझे यह उत्तर दिया कि 'पहले मैं पति के घर आये हुए बहुत से अतिथियों की सेवा टहल करने वाली परिचारिका थी । उन्हीं दिनों जब मैंने तुझे प्राप्त किया । अतः मैं यह नहीं जानती कि तू किस गोत्र वाला है ? मैं तो जबाला नाम वाली हूँ और तू सत्यकाम नाम वाला है ।' अतः हे गुरो ! मैं सत्यकाम जाबाल हूँ' ।4।

तꣳ होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधꣳ

सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय

कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः

सोम्यानुसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच

नासहस्रेणावर्तेयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा

सहस्रꣳ सम्पेदुः ॥ ४.४.५॥

उससे गौतम ने कहा- ‘इतना स्पष्ट भाषण कोई ब्राह्मणेतर नहीं कर सकता । अतः हे सौम्य ! तू समिधा ले आ, मैं तेरा उपनयन कर दूँगा क्योंकि तूने सत्य का त्याग नहीं किया है ।’ तब उसका उपनयन कर चार सौ कृश और दुर्बल गौएँ निकालकर उससे कहा- ‘हे सौम्य ! तू इन गौओं के पीछे जा ।’ उन्हें ले जाते समय उसने कहा- ‘इनकी एक सहस्त्र गायें हुए बिना मैं नहीं लौटूँगा’ । जब तक कि वे एक सहस्त्र हुईं वह बहुत वर्षों तक वन में ही रहा ।5।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ पञ्चम खण्ड ॥

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति

भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्रꣳ स्मः

प्रापय न आचार्यकुलम् ॥ ४.५.१॥

तब उससे साँड ने 'सत्यकाम !' ऐसा कहा । उसने 'भगवन् !' ऐसा उत्तर दिया । 'हे सौम्य ! हम एक सहस्त्र हो गए हैं, अब तू हमें आचार्यकुल में पहुँचा दे' ।1।

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति

तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला

दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः

पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥ ४.५.२॥

'मैं तुझे ब्रह्म का एक पाद बतलाऊँ ?' तब सत्यकाम ने कहा- 'भगवन् मुझे बतलावें' । साँड उससे बोला- 'पूर्व दिक्-कला, पश्चिम दिक्-

कला, दक्षिण दिक्-कला और उत्तर दिक्-कला, हे सौम्य ! यह ब्रह्म का 'प्रकाशवान' नामक चार कलाओं वाला पाद है' ।2।

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः
प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिꣳल्लोके भवति
प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं
पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥ ४.५.३॥

वह, जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की 'प्रकाशवान' इस गुण से युक्त उपासना करता है, इस लोक में प्रकाशवान होता है और प्रकाशवान लोकों को जीत लेता है, जो कि इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की 'प्रकाशवान' इस गुण से युक्त उपासना करता है ।3।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

॥ षष्ठ खण्ड ॥

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते ग

आभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं

बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय

पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ ४.६.१॥

अग्नि तुझे दूसरा पाद बतलावेगा' । दूसरे दिन उसने गौओं को हाँक दिया । वे सायंकाल में जहाँ एकत्रित हुईं, वहीं अग्नि प्रज्वलित कर गौओं को रोक समिधाधान कर अग्नि के पश्चिम पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया ।1।

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ ४.६.२॥

उससे अग्नि ने 'सत्यकाम !' ऐसा कहा । तब उसने 'भगवन् !' ऐसा प्रत्युत्तर दिया ।2।

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति

तस्मै होवाच पृथिवी कलान्तरिक्षं कला द्यौः कला

समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो

ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥ ४.६.३॥

मैं तुझे ब्रह्म का एक पाद बतलाऊँ ?' तब सत्यकाम ने कहा- 'भगवन् मुझे बतलावें' । अग्नि उससे बोला- 'पृथ्वी कला है, अन्तरिक्ष कला है, द्युलोक कला है और समुद्र कला है । हे सौम्य ! यह ब्रह्म का 'अनन्तवान' नामक चार कलाओं वाला पाद है' ।3।

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं

ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिꣳल्लोके

भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं

पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४.६.४॥

वह, जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की 'अनन्तवान' इस गुण से युक्त उपासना करता है, इस लोक में अनन्तवान होता है और अनन्तवान लोकों को जीत लेता है, जो कि इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की 'अनन्तवान' इस गुण से युक्त उपासना करता है ।4।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

॥ सप्तम खण्ड ॥

हꣳसस्ते पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा

अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं

बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय

पश्चादग्नेः प्राङ्पोपविवेश ॥ ४.७.१॥

हंस तुझे तीसरा पाद बतलावेगा' । दूसरे दिन उसने गौओं को हाँक दिया । वे सायंकाल में जहाँ एकत्रित हुईं, वहीं अग्नि प्रज्वलित कर गौओं को रोक समिधाधान कर अग्नि के पश्चिम पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया ।1।

तꣳहꣳस उपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह
प्रतिशुश्राव ॥ ४.७.२॥

तब हंस ने उसके समीप उतरकर कहा- 'सत्यकाम !' तब उसने 'भगवन् !' ऐसा प्रत्युत्तर दिया ।2।

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति

तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला

विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो

ज्योतिष्मान्नाम ॥ ४.७.३॥

'मैं तुझे ब्रह्म का एक पाद बतलाऊँ ?' तब सत्यकाम ने कहा- 'भगवन् मुझे बतलावें' । हंस उससे बोला- 'अग्नि कला है, सूर्य कला है, चन्द्रमा कला है और विद्युत कला है । हे सौम्य ! यह ब्रह्म का 'ज्योतिष्मान' नामक चार कलाओं वाला पाद है' ।3।

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिꣳल्लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ॥ ४.७.४॥

जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की 'ज्योतिष्मान' इस गुण से युक्त उपासना करता है, इस लोक में ज्योतिष्मान होता है और ज्योतिष्मान लोकों को जीत लेता है, जो कि इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की 'ज्योतिष्मान' इस गुण से युक्त उपासना करता है ।4।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

॥ अष्टम खण्ड ॥

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार

ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा

उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ ४.८.१॥

'मदगु तुझे चौथा पाद बतलावेगा' । दूसरे दिन उसने गौओं को हाँक दिया । वे सायंकाल में जहाँ एकत्रित हुईं, वहीं अग्नि प्रज्वलित कर गौओं को रोक समिधाधान कर अग्नि के पीछे पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया ।1।

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति

ह प्रतिशुश्राव ॥ ४.८.२॥

मदगु ने उसके समीप उतरकर कहा- 'सत्यकाम !' तब उसने 'भगवन् !' ऐसा प्रत्युत्तर दिया ।2।

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति

तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः

कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम

॥ ४.८.३॥

‘हे सौम्य ! मैं तुझे ब्रह्म का पाद बतलाऊँ ?’ तब सत्यकाम ने कहा- ‘भगवन् मुझे बतलावें’ । मदगु उससे बोला- ‘प्राण कला है, चक्षु कला है, श्रोत्र कला है और मन कला है । हे सौम्य ! यह ब्रह्म का ‘आयतनवान’ नामक चार कलाओं वाला पाद है’ ।3।

स यै एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण

आयतनवानित्युपास्त आयतनवानस्मिꣳल्लोके

भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं

विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते

॥ ४.८.४॥

वह, जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की ‘आयतनवान’ इस गुण से युक्त उपासना करता है, इस लोक में आयतनवान होता है और आयतनवान लोकों को जीत लेता है, जो कि इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की ‘आयतनवान’ इस गुण से युक्त उपासना करता है ।4।

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

॥ नवम खण्ड ॥

प्राप हाचर्यकुलं तमाचर्योऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ ४.९.१॥

आचार्यकुल में पहुँचा । उससे आचार्य ने कहा-'सत्यकाम !' तब उसने उत्तर दिया- 'भगवन् !' ।1।

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वानुशशासेत्यन्ये

मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाꣳस्त्वेव मे कामे ब्रूयात्

॥ ४.९.२॥

'हे सौम्य ! तू ब्रह्मवेत्ता-सा भासित हो रहा है, तुझे किसने उपदेश दिया है ?' सत्यकाम ने उत्तर दिया ' मनुष्यों से भिन्न ने मुझे उपदेश दिया है, अब मेरी इच्छा के अनुसार आप पूज्यपाद ही मुझे विद्या का उपदेश करें' ।2।

श्रुतꣳह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता

साधिष्ठं प्रापतीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किंचन

वीयायेति वीयायेति ॥ ४.९.३॥

'मैंने श्रीमान् – जैसे ऋषियों से सुना है कि आचार्य से जानी गयी विद्या ही अतिशय साधुता को प्राप्त होती है' । तब आचार्य ने उसे उसी विद्या का उपदेश दिया । उसमें कुछ भी न्यून नहीं हुआ, न्यून नहीं हुआ ।3।

॥ इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशम खण्ड ॥

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले

ब्रह्मचार्यमुवास तस्य ह द्वादश वार्षाण्यग्नीन्परिचचार

स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्तयꣳस्तं ह स्मैव न

समावर्तयति ॥ ४.१०.१॥

उपकोसल नाम से प्रसिद्ध कमल का पुत्र सत्यकाम जाबाल के यहाँ ब्रह्मचर्य ग्रहण करके रहता था। उसने बारह वर्ष तक उस आचार्य के अग्नियों की सेवा की, किन्तु आचार्य ने अन्य ब्रह्मचारियों का तो समावर्तन संस्कार कर दिया, केवल इसी का नहीं किया।1।

तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन्परिचचारीन्मा

त्वाग्नयः परिप्रवोचन्प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै हाप्रोच्यैव

प्रवासांचक्रे ॥ ४.१०.२॥

आचार्य से उनकी भार्या ने कहा- 'यह ब्रह्मचारी खूब तपस्या कर रहा है, इसने अच्छी तरह अग्नियों की सेवा की है। अग्नियाँ आपकी निन्दा न करें, अतः इसे विद्या का उपदेश कर दीजिए।' किन्तु वह उसे उपदेश किये बिना ही बाहर चला गया।2।

स ह व्याधिनानशितुं दध्रे तमाचार्यजायोवाच

ब्रह्मचारिन्नशान किं नु नाश्नासीति स होवाच

बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधीभिः

प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ॥ ४.१०.३॥

उस उपकोसल ने मानसिक खेद से अनशन करने का निश्चय किया । उससे आचार्य पत्नी ने कहा- 'अरे ब्रह्मचारिन् ! तू भोजन कर, क्यों नहीं भोजन करता ?' वह बोला- 'इस मनुष्य में बहुत सी कामनाएँ रहती हैं जो वस्तु के स्वरूप का उल्लंघन करके अनेक विषयों की ओर जाने वाली हैं । मैं उन्हीं नानात्यय मानसिक चिन्ताओं से परिपूर्ण हूँ, इसलिए भोजन नहीं करूँगा' ।3।

अथ हाग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं नः

पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः प्राणो ब्रह्म

कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति ॥ ४.१०.४॥

फिर अग्नियों ने एकत्र होकर कहा- 'यह ब्रह्मचारी तपस्या कर चुका है, इसने हमारी अच्छी तरह सेवा की है । अच्छा, हम इसे उपदेश

करें' ऐसा निश्चय कर वे उससे बोले- 'प्राण ब्रह्म है, 'क' ब्रह्म है 'ख' ब्रह्म है' ।4।

स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न

विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव

कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ॥ ४.१०.५॥

वह बोला- 'यह तो मैं जानता हूँ कि प्राण ब्रह्म है, किन्तु 'क' और 'ख' को नहीं जानता ।' तब वे बोले- 'निश्चय जो 'क' है वही 'ख' है और जो 'ख' है वही 'क' है ।' इस प्रकार उन्होंने उसे प्राण और उसके आश्रयभूत आकाश का उपदेश किया ।5।

॥ इति दशमः खण्डः ॥

॥ एकादश खण्ड ॥

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति य एष
आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ ४.११.१॥

फिर उसे गार्हपत्याग्नि ने शिक्षा दी- 'पृथ्वी, अग्नि, अन्न और आदित्य । आदित्य के अन्तर्गत जो यह पुरुष दिखायी देता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ' ।1।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ ४.११.२॥

वह पुरुष, जो इसे इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है, पापकर्मों को नष्ट कर देता है, अग्निलोकवान होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है तथा उसके उत्तरवर्ती पुरुष क्षीण नहीं होते । तथा उसका हम इस लोक और परलोक में भी पालन करते हैं जो कि इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है ।2।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

॥ द्वादश खण्ड ॥

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासापो दिशो नक्षत्राणि

चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि

स एवाहमस्मीति ॥ ४.१२.१॥

फिर उसे अन्वाहार्यपचन ने शिक्षा दी- 'जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा। चन्द्रमा के अन्तर्गत जो यह पुरुष दिखायी देता है वह मैं हूँ वही मैं हूँ' ।1।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति

सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप

वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं

विद्वानुपास्ते ॥ ४.१२.२॥

वह पुरुष, जो इसे इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है, पापकर्मों को नष्ट कर देता है, लोकवान होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है तथा उसके उत्तरवर्ती पुरुष क्षीण नहीं होते। तथा उसका हम इस लोक और परलोक में भी पालन करते हैं जो कि इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है ।2।

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

॥ त्रयोदश खण्ड ॥

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति
य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स
एवाहमस्मीति ॥ ४.१३.१॥

फिर उसे आहवनीयाग्नि ने शिक्षा दी- 'प्राण, आकाश, द्युलोक और विद्युत। विद्युत के अन्तर्गत जो यह पुरुष दिखायी देता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ' ।1।

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति
सर्वमयुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप
वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं
विद्वानुपास्ते ॥ ४.१३.२॥

वह पुरुष, जो इसे इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है, पापकर्मों को नष्ट कर देता है, लोकवान होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है तथा उसके उत्तरवर्ती पुरुष

क्षीण नहीं होते । तथा उसका हम इस लोक और परलोक में भी पालन करते हैं जो कि इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है ।2।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

॥ चतुर्दश खण्ड ॥

ते होचुरुपकोसलैषा सोम्य तेऽस्मद्विद्यात्मविद्या

चाचार्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम

हास्याचार्यस्तमाचार्योऽभ्युवादोपकोसल३ इति

॥ ४.१४.१॥

उन्होंने कहा- 'उपकोसल ! हे सौम्य ! यह अपनी विद्या और आत्मविद्या तेरे प्रति कही । आचार्य तुझे मार्ग बतलावेंगे ।' तदनन्तर उसके आचार्य आये । आचार्य ने कहा- 'उपकोसल !' ।1।

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति

को नु त्वानुशशासेति को नु मानुशिष्याद्धो इतीहापेव

निह्नुत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इतीहाग्नीनभ्यूदे

किं नु सोम्य किल तेऽवोचन्निति ॥ ४.१४.२॥

उसने 'भगवन् !' ऐसा उत्तर दिया । 'हे सौम्य ! तेरा मुख ब्रह्मवेत्ता के समान जान पड़ता है, तुझे किसने उपदेश किया है ?' 'अजी ! मुझे कौन उपदेश करता' ऐसा कहकर मानो वह उसे छिपाने लगा । 'निश्चय इन्हींने जो अन्य प्रकार के थे और अब ऐसे हैं'- ऐसा कहकर उसने अग्नियों को बतलाया । तब आचार्य ने पूछा- 'हे सौम्य ! इन्होंने तुझे क्या बतलाया है ?' ।2।

इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान्वाव किल सोम्य तेऽवोचन्नहं

तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त

एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु में भगवानिति तस्मै होवाच ॥ ४.१४.३॥

तब उसने 'यह बतलाया है' ऐसा कहकर उत्तर दिया । 'हे सौम्य ! उन्होंने तो तुझे लोकों का ही उपदेश किया है, अब मैं तुझे वह बतलाता हूँ जिसे जानने वाले से पापकर्म का सम्बन्ध उसी प्रकार

नहीं होता जिस प्रकार कमलपत्र का सम्बन्ध जल से नहीं होता ।' वह बोला- 'भगवन् ! मुझे बतलावें ।' तब आचार्य उससे बोले ।3।

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

॥ पञ्चदश खण्ड ॥

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति ॥ ४.१५.१॥

'यह जो नेत्र में पुरुष दिखायी देता है यह आत्मा है'- ऐसा उसने कहा 'यह अमृत है, अभय है और ब्रह्म है ।' उसमें यदि घृत या जल डालें तो वह पलकों में ही चला जाता है ।1।

एतꣳ संयद्वाम इत्याचक्षत एतꣳ हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥ ४.१५.२॥

इसे 'संयद्वाम' कहते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण सेवनीय वस्तुएँ सब ओर से इसे ही प्राप्त होती हैं, जो इस प्रकार जानता है उसे सम्पूर्ण सेवनीय वस्तुएँ सब ओर से प्राप्त होती हैं ।2।

एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥ ४.१५.३॥

यही वामनी है, क्योंकि यही सम्पूर्ण वामों का वहन करता है । जो ऐसा जानता है वह सम्पूर्ण वामों को वहन करता है ।3।

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४.१५.४॥

यही भामनी है, क्योंकि यही सम्पूर्ण लोकों में भासमान होता है । जो ऐसा जानता है वह सम्पूर्ण लोकों में भासमान होता है ।4।

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च
नार्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न
आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान्मासेभ्यः
संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्
पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन
प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते ॥ ४.१५.५॥

अब इसके लिए शवकर्म करें अथवा न करें, वह अर्चिरभिमानी देवता को ही प्राप्त होता है । फिर अर्चिरभिमानी देवता से दिवसाभिमानी देवता को, दिवसाभिमानी देवता से शुक्लाभिमानी देवता को और शुक्लाभिमानी देवता से उत्तरायण के छः मासों को प्राप्त होता है । मासों से संवत्सर को, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत को प्राप्त होता है । वहाँ से अमानव पुरुष इन्हें ब्रह्म को प्राप्त करा देता है । यह देवमार्ग-ब्रह्ममार्ग है । इससे जाने वाले पुरुष इस मानवमण्डल से नहीं लौटते, नहीं लौटते ।5।

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

॥ षोडश खण्ड ॥

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवते एष ह यन्निदꣳ सर्वं पुनाति यदेष यन्निदꣳ सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक्च वर्तनी ॥ ४.१६.१॥

यह जो चलता है निश्चय यज्ञ ही है । यह चलता हुआ निश्चय इस सम्पूर्ण जगत को पवित्र करता है, क्योंकि यह गमन करता हुआ इस समस्त संसार को पवित्र कर देता है, इसलिए यही यज्ञ है । मन और वाक्- ये दोनों इसके मार्ग हैं ।1।

तयोरन्यतरां मनसा सꣳस्करोति ब्रह्मा वाचा होताध्वर्युरुद्गातान्यतराꣳस यत्रौपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यवदति ॥ ४.१६.२॥

उनमें से एक मार्ग का ब्रह्मा मन के द्वारा संस्कार करता है तथा होता, अध्वर्यु और उद्गाता ये वाणी द्वारा दूसरे मार्ग का संस्कार करते हैं । यदि प्रातरनुवाक के आरम्भ हो जाने पर परिधानीया ऋचा के उच्चारण से पूर्व ब्रह्मा बोल उठता है तो वह केवल एक मार्ग का ही संस्कार करता है, दूसरा मार्ग नष्ट हो जाता है ।2।

अन्यतरामेव वर्तनीꣳ सꣳस्करोति हीयतेऽन्यतरा स यथैकपाद्व्रजन्रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञोरिष्यति यज्ञꣳ रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति स इष्ट्वा पापीयान्भवति ॥ ४.१६.३॥

जिस प्रकार एक पाँव से चलने वाला पुरुष अथवा एक पहिये से चलने वाला रथ नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इसका यज्ञ भी नाश को प्राप्त हो जाता है। यज्ञ के नष्ट होने के पश्चात् यजमान का नाश होता है, इस प्रकार का यज्ञ करने पर वह और भी अधिक पापी हो जाता है।3।

अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यवदत्युभे एव वर्तनी सꣳस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ॥ ४.१६.४॥

और यदि प्रातरनुवाक का आरम्भ होने के अनन्तर परिधानीया ऋचा से पूर्व ब्रह्मा नहीं बोलता है तो दोनों ही मार्ग का संस्कार कर देते हैं। तब कोई भी मार्ग नष्ट नहीं होता।4।

स यथोभयपाद्व्रजन्रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान्भवति ॥ ४.१६.५॥

जिस प्रकार दोनों पैरों से चलने वाला पुरुष अथवा दोनों दोनों पहियों से चलने वाला रथ स्थित रहता है इसी प्रकार इसका यज्ञ स्थित रहता है, यज्ञ के स्थित रहने पर यजमान भी स्थित रहता है। वह यज्ञ करके श्रेष्ठ होता है।5।

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

॥ सप्तदश खण्ड ॥

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाꣳ

रसान्प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षातादित्यं दिवः

॥ ४.१७.१॥

प्रजापति ने लोकों को लक्ष्य बनाकर ध्यानरूप तप किया । उन तप किये जाते हुए लोकों से उसने रस निकाले । पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु और द्युलोक से आदित्य को उद्धृत किया ।1।

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानाꣳ

रसान्प्रावृहदग्नेरृचो वायोर्यजूꣳषि सामान्यादित्यात्

॥ ४.१७.२॥

फिर उसने इन तीन देवताओं को लक्ष्य करके तप किया । उन तप किये जाते हुए देवताओं से उसने रस निकाले । अग्नि से ऋक्, वायु से यजुः और आदित्य से साम ग्रहण किये ।2।

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया

रसान्प्रावृहद्भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति

सामभ्यः ॥ ४.१७.३॥

फिर उसने इस त्रयीविद्या को लक्ष्य करके तप किया। उस तप की जाती हुई विद्या से उसने रस निकाले। ऋक् से भूः, यजुः से भुवः और साम से स्वः इन रसों को ग्रहण किया।3।

तद्यदृक्तो रिष्येद्भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव

तद्रसेनर्चां वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति

॥ ४.१७.४॥

उस यज्ञ में यदि ऋक् के सम्बन्ध से क्षत हो तो 'भूः स्वाहा' स। ऐसा कहकर गार्हपत्याग्नि में हवन करे। इस प्रकार वह ऋचाओं के र से ऋचाओं के वीर्य द्वारा ऋक् सम्बन्धी यज्ञ के क्षत की पूर्ति करता है।4।

स यदि यजुष्टो रिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ

जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य

विरिष्टꣳ संदधाति ॥ ४.१७.५॥

और यदि यजुः के सम्बन्ध से क्षत हो तो 'भुवः स्वाहा' । ऐसा कहकर दक्षिणाग्नि में हवन करे । इस प्रकार वह यजुओं के रस से यजुओं के वीर्य द्वारा यज्ञ के यजुः सम्बन्धी क्षत की पूर्ति करता है ।5।

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये

जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य

विरिष्टं संदधाति ॥ ४.१७.६॥

और यदि साम के सम्बन्ध से क्षत हो तो 'स्वः स्वाहा' । ऐसा कहकर आहवनीयाग्नि में हवन करे । इस प्रकार वह साम के रस से साम के वीर्य द्वारा यज्ञ के साम सम्बन्धी क्षत की पूर्ति करता है ।6।

तद्यथा लवणेन सुवर्णꣳ संदध्यात्सुवर्णेन रजतꣳ रजतेन त्रपु त्रपुणा
सीसꣳ सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा ॥ ४.१७.७॥

इस विषय में, जिस प्रकार लवण से सुवर्ण को, सुवर्ण से चाँदी को, चाँदी से त्रपु को, त्रपु से सीसे को, सीसे से लोहे को और लोहे से काष्ठ को अथवा चमड़े से काष्ठ को जोड़ा जाता है ।7।

एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया

वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति भेषजकृतो ह वा

एष यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवति ॥ ४.१७.८॥

उसी प्रकार इन लोक, देवता और त्रयीविद्या के वीर्य से यज्ञ के क्षत का प्रतिसंधान किया जाता है । जिसमें इस प्रकार जाननेवाला ब्रह्मा होता है वह यज्ञ निश्चय ही मानो ओषधियों द्वारा संस्कृत होता है ।8।

एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदꣳ

ह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा यतो यत आवर्तते

तत्तद्गच्छति ॥ ४.१७.९॥

जहाँ इस प्रकार जाननेवाला ब्रह्मा होता है वह यज्ञ उदक्प्रवण होता है । इस प्रकार जाननेवाले ब्रह्मा के उद्देश्य से ही यह गाथा प्रसिद्ध है कि "जहाँ-जहाँ कर्म आवृत्त होता है वहीं वह पहुँच जाता है" ।9।

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरूनश्वाभिरक्षत्येवंविद्ध

वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानꣳ सर्वाꣳश्चर्त्विजोऽभिरक्षति

तस्मादेवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम्

॥ ४.१७.१०॥

एक मानव ब्रह्मा ही ऋत्विक् है । जिस प्रकार युद्ध में घोड़ी योद्धाओं की रक्षा करती है उसी प्रकार ऐसा जाननेवाला ब्रह्मा यज्ञ, यजमान और अन्य समस्त ऋत्विजों की भी सब ओर से रक्षा करता है । अतः इस प्रकार जानने वाले को ही ब्रह्मा बनावे, ऐसा न जाननेवाले को नहीं, ऐसा न जाननेवाले को नहीं ।10।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ पञ्चमोऽध्यायः पंचम अध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च

भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ ५.१.१॥

जो ज्येष्ठ और श्रेष्ठ को जानता है वह ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हो जाता है । निश्चय ही प्राण ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है ।1।

यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति

वाग्वाव वसिष्ठः ॥ ५.१.२॥

जो कोई वसिष्ठ को जानता है वह स्वजातियों में वसिष्ठ होता है, निश्चय ही वाक् वसिष्ठ है ।2।

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिꣳश्च

लोकेऽमुष्मिꣳश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ५.१.३॥

जो कोई प्रतिष्ठा को जानता है वह इस लोक और परलोक में प्रतिष्ठित होता है, चक्षु ही प्रतिष्ठा है ।3।

यो ह वै सम्पदं वेद सꣳहास्मै कामाः पद्यन्ते

दैवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव सम्पत् ॥ ५.१.४॥

जो कोई सम्पद् को जानता है उसे दैव और मानुष काम सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हैं। श्रोत्र ही सम्पद् है ।4।

यो ह वा आयतनं वेदायतनꣳ ह स्वानां भवति

मनो ह वा आयतनम् ॥ ५.१.५॥

जो आयतन को जानता है वह स्वजातियों का आयतन होता है। निश्चय ही मन आयतन है ।5।

अथ ह प्राणा अहꣳश्रेयसि व्यूदिरेऽहꣳश्रेयानस्म्यहꣳ

श्रेयानस्मीति ॥ ५.१.६॥

एक बार ये सब प्राण 'मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ' इस प्रकार अपनी श्रेष्ठता के लिए विवाद करने लगे ।6।

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नः

श्रेष्ठ इति तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं

पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ॥ ५.१.७॥

उन प्राणों ने अपने पिता प्रजापति के पास जाकर कहा- 'भगवन् ! हममें कौन श्रेष्ठ है ?' प्रजापति ने उनसे कहा- 'तुममें से जिसके निकल जाने पर शरीर अत्यन्त पापिष्ठ सा दिखायी देने लगे वही श्रेष्ठ है' ।7।

सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते
मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा
शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥ ५.१.८॥

तब उस वाक् ने उत्क्रमण किया । उसने एक वर्ष प्रवास करने के अनन्तर फिर लौटकर पूछा 'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके ?' – 'जिस प्रकार गूँगे लोग बिना बोले प्राण से प्राणन-क्रिया करते, नेत्र से देखते, कान से सुनते और मन से चिन्तन करते हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार ।' ऐसा सुनकर वाक् ने शरीर में प्रवेश किया ।8।

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच

कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथान्धा अपश्यन्तः

प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण

ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥ ५.१.९॥

तब उस चक्षु ने उत्क्रमण किया। उसने एक वर्ष प्रवास करने के अनन्तर फिर लौटकर पूछा 'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके ?' – 'जिस प्रकार अन्धे लोग बिना देखे प्राण से प्राणन-क्रिया करते, वाणी से बोलते, कान से सुनते और मन से चिन्तन करते हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार।' ऐसा सुनकर चक्षु ने शरीर में प्रवेश किया।9।

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच

कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः

प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा

ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥ ५.१.१०॥

तब उस श्रोत्र ने उत्क्रमण किया। उसने एक वर्ष प्रवास करने के अनन्तर फिर लौटकर पूछा 'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके ?' – 'जिस प्रकार बहरे लोग बिना सुने प्राण से प्राणन-क्रिया करते, नेत्र से देखते, वाणी से बोलते और मन से चिन्तन करते हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार।' ऐसा सुनकर श्रोत्र ने शरीर में प्रवेश किया।10।

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच

कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः

प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा

शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ॥ ५.१.११॥

तब मन ने उत्क्रमण किया । उसने एक वर्ष प्रवास करने के अनन्तर फिर लौटकर पूछा 'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके ?' – 'जिस प्रकार बच्चे, जिनका कि मन विकसित नहीं होता, प्राण से प्राणन-क्रिया करते, नेत्र से देखते, कान से सुनते और वाणी से बोलते हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार ।' ऐसा सुनकर मन ने भी प्रवेश किया ।11।

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः

पड्वीशशङ्कून्संखिदेदेवमितरान्प्राणान्समखिदत्तꣳ

हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि

मोत्क्रमीरिति ॥ ५.१.१२॥

फिर प्राण ने उत्क्रमण करने की इच्छा की । उसने, जिस प्रकार अच्छा घोड़ा अपने पैर बाँधने वाली कीलों को उखाड़ डालता है, उसी प्रकार अन्य प्राणों को उखाड़ दिया । तब उन सबने उसके सामने जाकर कहा 'भगवन् ! आप रहें, आप ही हम सबमें श्रेष्ठ हैं, आप उत्क्रमण न करें' ।12।

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठासीति ॥ ५.१.१३॥

फिर उससे वाक् ने कहा- 'मैं जो वसिष्ठ हूँ सो तुम्हीं वसिष्ठ हो।' फिर उससे चक्षु ने कहा- 'मैं जो प्रतिष्ठा हूँ सो तुम्हीं प्रतिष्ठा हो' ।13।

अथ हैनꣳश्रोत्रमुवाच यदहं सम्पदस्मि त्वं

तत्सम्पदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि

त्वं तदायतनमसीति ॥ ५.१.१४॥

फिर उससे श्रोत्र ने कहा- 'मैं जो सम्पद् हूँ सो तुम्हीं सम्पद् हो।' फिर उससे मन ने कहा- 'मैं जो आयतन हूँ सो तुम्हीं आयतन हो' ।14।

न वै वाचो न चक्षूꣳषि न श्रोत्राणि न

मनाꣳसीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो

ह्येवैतानि सर्वाणि भवति ॥ ५.१.१५॥

लोक में समस्त इन्द्रियों को न वाक्, न चक्षु, न श्रोत्र और न मन ही कहते हैं, परन्तु 'प्राण' ऐसा कहते हैं, क्योंकि ये सब प्राण ही हैं ।15।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किंचिदिदमा

श्वभ्य आ शकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो

ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किंचनानन्नं

भवतीति ॥ ५.२.१॥

उसने कहा- 'मेरा अन्न क्या होगा ?' तब वागादि ने कहा- 'कुत्तों और पक्षियों से लेकर सब जीवों का यह जो अन्न है', सो यह सब 'अन' (प्राण) का अन्न है । 'अन'- यह प्राण का प्रत्यक्ष नाम है । इस प्रकार जाननेवाले के लिए कुछ भी अनन्न नहीं होता है ।1।

स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति

होचुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः

पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधति

लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति ॥ ५.२.२॥

उसने कहा- 'मेरा वस्त्र क्या होगा ?' तब वागादि बोले- 'जल' । इसी से भोजन करने वाले पुरुष भोजन के पूर्व और पश्चात् इसका जल से आच्छादन करते हैं । ऐसा करने से वह वस्त्र प्राप्त करने वाला और अनग्न होता है ।2।

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच

यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मिञ्छाखाः

प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥ ५.२.३॥

उस इस प्राण-दर्शन को सत्यकाम जाबाल ने वैयाघ्रपद्य गोश्रुति के प्रति निरूपित करके कहा- 'यदि इसे शुष्क स्थाणु के प्रति कहे तो उसमें शाखा उत्पन्न हो जाएगी और पत्ते फूट आवेंगे' ।3।

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याꣳ

रात्रौ सर्वौषधस्य मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय

श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे

सम्पातमवनयेत् ॥ ५.२.४॥

अब यदि वह महत्त्व को प्राप्त होना चाहे तो उसे अमावस्या को दीक्षित होकर पूर्णिमा की रात्रि को सर्वऔषध के दधि और

मधुसम्बन्धी मन्थ का मन्थन कर 'ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा' ऐसा कहते हुए अग्नि में घृत का हवन कर मन्थ पर उसका अवशेष डालना चाहिए ।4।

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे

सम्पातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा

मन्थे सम्पातमवनयेत्सम्पदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा

मन्थे सम्पातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा

मन्थे सम्पातमवनयेत् ॥ ५.२.५॥

'वासिष्ठाय स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि में घृत-आहुति देकर मन्थ में घृत का स्राव डाले, 'प्रतिष्ठाय स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि में घृत-आहुति देकर मन्थ में घृत का स्राव डाले, 'संपदे स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि में घृत-आहुति देकर मन्थ में घृत का स्राव डाले, तथा 'आयतनाय स्वाहा' इस मन्त्र से अग्नि में घृत-आहुति देकर मन्थ में घृत का स्राव डाले ।5।

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा

हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाधिपतिः

स मा ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं

गमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानीति ॥ ५.२.६॥

तदनन्तर अग्नि से कुछ दूर हटकर मन्थ को अञ्जलि में ले वह 'अमो नामासि' इत्यादि मन्त्र का जप करे । हे मन्थ ! तू 'अम' नामवाला है, क्योंकि यह सारा जगत तेरे साथ अवस्थित है । वह तू ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, राजा और सबका अधिपति है । वह तू मुझे ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठत्व, राज्य और आधिपत्य को प्राप्त करा । मैं ही यह सर्वरूप हो जाऊँ ।6।

अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह

इत्याचामति वयं देवस्य भोजनमित्याचामति श्रेष्ठꣳ

सर्वधातममित्याचामति तुरं भगस्य धीमहीति सर्वं पिबति

निर्णिज्य कꣳसं चमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्मणि वा

स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियं

पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात् ॥ ५.२.७॥

फिर वह इस ऋचा से पादशः उस मन्थ का भक्षण करता है । 'तत्सवितुर्वृणीमहे' ऐसा कहकर भक्षण करता है, 'वयं देवस्य भोजनम्' ऐसा कहकर भक्षण करता है, 'श्रेष्ठम् सर्वधातमम्' ऐसा कहकर भोजन करता है, तथा 'तुरं भगस्य धीमहि' ऐसा कहकर

कटोरे या चम्मच को धोकर सारा मन्थलेप पी जाता है । तत्पश्चात वह अग्नि के पीछे चर्म अथवा स्थण्डिल पर वाणी का संयम कर अभिभूत न होता हुआ शयन करता है । उस समय यदि वह स्वप्न में स्त्री को देखे तो समझे कि कर्म समृद्ध हो गया ।7।

तदेष श्लोको यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियः स्वप्नेषु

पश्यन्ति समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने

तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥ ५.२.८॥

इस विषय में यह श्लोक है- जिस समय काम्यकर्मों में स्वप्न में स्त्री को देखे तो उस स्वप्नदर्शन के होने पर उस कर्म में समृद्धि जाने ।8।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ तृतीय खण्ड ॥

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानु त्वाशिषत्पितेत्यनु हि भगव इति ॥ ५.३.१॥

आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु पंचालदेशीय लोगों की सभा में आया । उससे जीवल के पुत्र प्रवाहण ने कहा- 'हे कुमार ! क्या पिता ने तुझे शिक्षा दी है !' इस पर उसने कहा- 'हाँ' भगवन् !' ।1।

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति न भगव इति वेत्थ

यथा पुनरावर्तन्त३ इति न भगव इति वेत्थ

पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना३ इति

न भगव इति ॥ ५.३.२॥

'क्या तुझे मालूम है कि इस लोक से प्रजा कहाँ जाती है ?' [श्वेतकेतु-] 'नहीं भगवन् !' [प्रवाहण-] 'क्या तू जानता है कि वह फिर इस लोक में कैसे आती है ?' [श्वेतकेतु-] 'नहीं भगवन् !' [प्रवाहण-] 'देवयान और पितृयान- इन दोनों मार्गों का एक-दूसरे से अलग होने का स्थान तुझे मालूम है ?' [श्वेतकेतु-] 'नहीं भगवन् !' ।2।

वेत्थ यथासौ लोको न सम्पूर्यत३ इति न भगव इति

वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो

भवन्तीति नैव भगव इति ॥ ५.३.३ ॥

[प्रवाहण-] 'तुझे मालूम है, ये पितृलोक भरता क्यों नहीं ?' [श्वेतकेतु-] 'भगवन् ! नहीं !' [प्रवाहण-] 'क्या तू जानता है कि पाँचवी आहुति के हवन कर दिए जाने पर आप (सोमघृतादि रस) 'पुरुष' संज्ञा को कैसे प्राप्त होते हैं ?' [श्वेतकेतु-] 'नहीं, भगवन् ! नहीं' ।3।

अथानु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न

विद्यात्कथꣳ सोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति स हायस्तः

पितुरर्धमेयाय तꣳ होवाचाननुशिष्य वाव किल मा

भगवानब्रवीदनु त्वाशिषमिति ॥ ५.३.४ ॥

'तो फिर तू स्वयं को- 'मुझे शिक्षा दी गयी है' ऐसा क्यों बोलता था ?' तब वह त्रस्त होकर अपने पिता के स्थान पर आया और उससे बोला- 'श्रीमान् ने मुझे शिक्षा दिए बिना ही कह दिया था कि मैंने तुझे शिक्षा दे दी है' ।4।

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां

नैकंचनाशकं विवक्तुमिति स होवाच यथा मा त्वं
तदैतानवदो यथाहमेषां नैकंचन वेद
यद्यहमिमानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ॥ ५.३.५॥

‘उस क्षत्रियबन्धु ने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे थे, किन्तु मैं उनमें से एक का भी विवेचन न कर सका’ । उसने कहा- ‘तुमने जैसे ये प्रश्न मुझे सुनाये हैं उनमें से एक को भी मैं नहीं जानता । यदि मैं इन्हें जानता होता तो तुम्हें क्यों न बतलाता ?’ ।5।

स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हां चकार
स ह प्रातः सभाग उदेयाय तꣳ होवाच मानुषस्य
भगवन्गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैव
राजन्मानुषं वित्तं यामेव कुमारस्यान्ते
वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव
॥ ५.३.६॥

तब वह गौतम, राजा के स्थान पर आया । राजा ने अपने यहाँ आये हुए उसकी पूजा की । दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही राजा की सभा में पहुँचने पर वह गौतम उसके पास गया । उसने उससे कहा- ‘हे भगवान् गौतम ! आप मनुष्य सम्बन्धी धन का वर माँग लीजिये ।’

उसने कहा- 'राजन् ! ये मनुष्य सम्बन्धी धन आप ही के पास रहें, आपने मेरे पुत्र के प्रति जो बात प्रश्नरूप से कही थी वही मुझे बतलाइए ।' तब वह संकट में पड़ गया ।6।

तꣳ ह चिरं वसेत्याज्ञापयांचकार तꣳ होवाच

यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक्त्वत्तः पुरा विद्या

ब्राह्मणान्गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव

प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ॥ ५.३.७'

यहाँ चिरकाल तक रहो' ऐसी आज्ञा दी और कहा- हे गौतम ! जिस प्रकार तुमने मुझसे कहा है, उससे तुम यह समझो कि पूर्वकाल में तुमसे पहले यह विद्या ब्राह्मणों के पास नहीं गयी । इसी से सभी लोकों में क्षत्रियों का ही प्रशासन होता रहा है' । ऐसा कहकर वह गौतम से बोला- ।7।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव

समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि

विस्फुलिङ्गाः ॥ ५.४.१॥

हे गौतम ! यह प्रसिद्ध लोक ही अग्नि है । उसका आदित्य ही समिध् है, किरणें ही धूम हैं, दिन ज्वाला है, चन्द्रमा अंगार है और नक्षत्र विस्फुलिंग हैं ।1।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति

तस्या अहुतेः सोमो राजा संभवति ॥ ५.४.२ ॥

उस इस अग्नि में देवगण श्रद्धा का हवन करते हैं । उस आहुति से सोम राजा की उत्पत्ति होती है ।2।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ पञ्चम खण्ड ॥

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो

विद्युदर्चिरशनिरङ्गाराह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥ ५.५.१॥

हे गौतम ! पर्जन्य ही अग्नि है । उसका वायु ही समिध् है, बादल ही धूम हैं, विद्युत ज्वाला है, वज्र अंगार है और गर्जन विस्फुलिंग हैं ।1।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमꣳ राजानं जुह्वति

तस्या आहुतेर्वर्षꣳ संभवति ॥ ५.५.२॥

उस इस अग्नि में देवगण राजा सोम का हवन करते हैं । उस आहुति से वर्षा होती है ।2।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

॥ षष्ठ खण्ड ॥

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव

समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा

अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः ॥ ५.६.१॥

हे गौतम ! पृथ्वी ही अग्नि है । उसका संवत्सर ही समिध् है, आकाश ही धूम है, रात्रि ज्वाला है, दिशाएँ अंगार हैं और अवान्तर दिशाएँ विस्फुलिंग हैं ।1।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति

तस्या आहुतेरन्नꣳ संभवति ॥ ५.६.२॥

उस इस अग्नि में देवगण वर्षा का हवन करते हैं । उस आहुति से अन्न होता है ।2।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

॥ सप्तम खण्ड ॥

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो

जिह्वार्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥ ५.७.१॥

हे गौतम ! पुरुष ही अग्नि है । उसका वाक् ही समिध् है, प्राण ही धूम हैं, जिह्वा ज्वाला है, चक्षु अंगार हैं और श्रोत्र विस्फुलिंग हैं ।1।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या

आहुते रेतः सम्भवति ॥ ५.७.२॥

उस इस अग्नि में देवगण अन्न का होम करते हैं । उस आहुति से वीर्य उत्पन्न होता है ।2।

॥ इति सप्तम खण्डः ॥

॥ अष्टम खण्ड ॥

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते

स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा

विस्फुलिङ्गाः ॥ ५.८.१॥

हे गौतम ! स्त्री ही अग्नि है । उसका उपस्थ ही समिध् है, पुरुष जो उपमंत्रण करता है वह धूम हैं, योनि ज्वाला है, जो भीतर की ओर करता है वह अंगार हैं और उससे जो आनन्द होता है वह विस्फुलिंग हैं ।1।

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति

तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति ॥ ५.८.२ ॥

उस इस अग्नि में देवगण वीर्य का हवन करते हैं । उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है ।2।

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

॥ नवम खण्ड ॥

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति

स उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा

यावद्वाथ जायते ॥ ५.९.१॥

इस प्रकार पाँचवी आहुति के दिये जाने पर आप 'पुरुष' शब्दवाची हो जाता है । वह जरायु से आवृत हुआ गर्भ दस या नौ महीने अथवा जबतक पूर्णांग नहीं होता, भीतर ही शयन करने के अनन्तर फिर उत्पन्न होता है ।1।

स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय

एव हरन्ति यत एवेतो यतः संभूतो भवति ॥ ५.९.२॥

इस प्रकार उत्पन्न होने पर वह आयु पर्यन्त जीवित रहता है । फिर मरने पर कर्मवश परलोक को प्रस्थित हुए उस जीव को अग्नि के प्रति ही ले जाते हैं, जहाँ से की वह आया था और जिससे उत्पन्न हुआ था ।2।

॥ इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशम खण्ड ॥

तद्य इत्थं विदुः। ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते

तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न

आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति

मासाꣳस्तान् ॥ ५.१०.१॥

वे जो कि इस प्रकार जानते हैं तथा वे जो कि वन में श्रद्धा और तप इनकी उपासना करते हैं, अर्चि के अभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं, अर्चि के अभिमानी देवताओं से दिवसाभिमानी देवताओं को, दिवसाभिमानियों से शुक्लपक्षाभिमानी देवताओं को, शुक्लपक्षाभिमानियों से जिन छः महीनों में सूर्य उत्तर की ओर जाता है, उन छः महीनों को ।1।

मासेभ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं

चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म

गमयत्येष देवयानः पन्था इति ॥ ५.१०.२॥

उन महीनों से संवत्सर को, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चन्द्रमा को और चन्द्रमा से विद्युत को प्राप्त होते हैं । वहाँ एक अमानव पुरुष है, वह उन्हें ब्रह्म को प्राप्त करा देता है । यह देवयान मार्ग है ।2।

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते

धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिꣳ

रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्दक्षिणैति

मासाꣳस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥ ५.१०.३॥

तथा जो ये गृहस्थ लोग ग्राम में इष्ट, पूर्त और दत्त- ऐसी उपासना करते हैं, वे धूम को प्राप्त होते हैं, धूम से रात्रि को, रात्रि से कृष्णपक्ष को तथा कृष्णपक्ष से जिन छः महीनों में सूर्य दक्षिणमार्ग से जाता है उनको प्राप्त होते हैं । ये लोग संवत्सर को प्राप्त नहीं होते ।3।

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष

सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥ ५.१०.४॥

दक्षिणायन के महीनों से पितृलोक को, पितृलोक से आकाश को और आकाश से चन्द्रमा को प्राप्त होते हैं । यह चन्द्रमा राजा सोम है । वह देवताओं का अन्न है, देवता लोग उसका भक्षण करते हैं ।4।

तस्मिन्यवात्सम्पातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते

यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति

धूमो भूत्वाभ्रं भवति ॥ ५.१०.५॥

वहाँ कर्मों का क्षय होने तक रहकर वे फिर इसी मार्ग से जिस प्रकार गए थे उसी प्रकार लौटते हैं । वे पहले आकाश को प्राप्त होते हैं और आकाश से वायु को, वायु होकर वे धूम हो जाते हैं और धूम्र होकर अभ्र हो जाते हैं ।5।

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा
ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो
यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥ ५.१०.६॥

वह अभ्र होकर मेघ होता है, मेघ होकर बरसता है । तब वे जीव इस लोक में धान, जौ, ओषधि, वनस्पति, तिल और उड़द आदि होकर उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार यह निष्क्रमण निश्चय ही अत्यन्त कष्टप्रद है । उस अन्न को जो-जो भक्षण करता है और जो-जो वीर्यसेचन करता है, तद्रूप ही वह जीव हो जाता है ।6।

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां

योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं

वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां

योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा

चण्डालयोनिं वा ॥ ५.१०.७॥

उनमें जो अच्छे आचरण वाले होते हैं वे शीघ्र ही उत्तम योनि को प्राप्त होते हैं । वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्य योनि प्राप्त करते हैं तथा जो अशुभ आचरण वाले होते हैं वे तत्काल अशुभ योनि को प्राप्त होते हैं । वे कुत्ते की योनि, शूकरयोनि अथवा चाण्डालयोनि को प्राप्त करते हैं ।7।

अथैतयोः पथोर्न कतरेणचन तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳस्थानं तेनासौ लोको न सम्पूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ॥ ५.१०.८॥

इनमें से किसी मार्ग द्वारा नहीं जाते, वे ये क्षुद्र और बारम्बार आने-जाने वाले प्राणी होते हैं। 'उत्पन्न होओ और मरो' यही उनका तृतीय स्थान होता है। इसी कारण यह परलोक नहीं भरता। अतः इस संसार गति से घृणा करनी चाहिए। इस विषय में यह मन्त्र है- ।8।

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा

चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरꣳस्तैरिति ॥ ५.१०.९॥

सुवर्ण का चोर, मद्य पीने वाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्रह्महत्यारा- ये चारों पतित होते हैं और पाँचवाँ उनके साथ संसर्ग करने वाला भी ।9।

अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद न सह

तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति

य एवं वेद य एवं वेद ॥ ५.१०.१०॥

किन्तु जो इस प्रकार इन पंचाग्नियों को जानता है वह उनके साथ संसर्ग करता हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता। वह शुद्ध, पवित्र और

पुण्यलोक का भागी होता है, जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार जानता है ।10।

॥ इति दशमः खण्डः ॥

॥ एकादश खण्ड ॥

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाꣳसां चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति ॥ ५.११.१॥

उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवि के पुत्र का पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष का पुत्र जन और अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल- ये महागृहस्थ और परम श्रोत्रिय एकत्रित होकर परस्पर विचार करने लगे कि हमारा आत्मा कौन है और ब्रह्म क्या है ? ।1।

ते ह सम्पादयांचक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳ हन्ताभ्यागच्छामेति तꣳ हाभ्याजग्मुः ॥ ५.११.२॥

उन पूजनीयों ने स्थिर किया कि यह अरुण का पुत्र उद्दालक इस समय इस वैश्वानर आत्मा को जानता है, अतः हम उसके पास चलें । ऐसा निश्चय कर वे उसके पास आये ।2।

स ह सम्पादयांचकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ॥ ५.११.३॥

उसने निश्चय किया, ये परम श्रोत्रिय महागृहस्थ मुझसे प्रश्न करेंगे, किन्तु में इन्हें पूरी तरह से न बतला सकूँगा, अतः मैं उन्हें दूसरा उपदेष्टा बतला दूँ ।3।

तान्होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳहन्ताभ्यागच्छामेति तꣳहाभ्याजग्मुः ॥ ५.११.४॥

उसने उनसे कहा- 'हे पूजनीयगण ! इस समय केकयकुमार अश्वपति इस वैश्वानरसंज्ञक आत्मा को अच्छी तरह जानता है । आइये, हम उसी के पास चलें ।' ऐसा कहकर वे उसके पास चले गए ।4।

तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयांचकार स ह प्रातः संजिहान उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कर्दर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ॥ ५.११.५॥

अपने पास आये हुए उन ऋषियों का राजा ने अलग-अलग सत्कार कराया । सबेरे उठते ही उसने कहा- 'मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है तथा न अदाता, न मद्यप, न अनाहिताग्नि, न अविद्वान और न परस्त्रीगामी ही है, फिर कुलटा स्त्री तो आयी ही कहाँ से ? हे पूज्यगण ! मैं भी यज्ञ करने वाला हूँ । मैं एक-एक ऋत्विक् को जितना धन दूँगा उतना ही आपको भी दूँगा, अतः आप लोग यहीं ठहरिए' ।5।

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳहैव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरꣳ सम्प्रत्यध्येषि तमेव नौ ब्रूहीति ॥ ५.११.६॥

वे बोले- 'जिस प्रयोजन से कोई पुरुष कहीं जाता है, उसे चाहिए कि अपने उसी प्रयोजन को कहे । इस समय आप वैश्वानर आत्मा को जानते हैं, उसी का आप हमारे प्रति वर्णन कीजिये' ।6।

तान्होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान्हानुपनीयैवैतदुवाच ॥ ५.११.७॥

वह उनसे बोला- 'अच्छा, मैं प्रातःकाल आप लोगों को इसका उत्तर दूँगा ।' तब दूसरे दिन वे पूर्वाह्ण में हाथ में समिधाएँ लेकर राजा के पास गए । उनका उपनयन न करके ही राजा ने उस विद्या का उपदेश किया ।7।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

॥ द्वादश खण्ड ॥

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥ ५.१२.१॥

राजा ने कहा- 'हे उपमन्युकुमार ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ?' 'हे राजन् ! मैं द्युलोक की ही उपासना करता हूँ' ऐसा उसने उत्तर दिया । 'तुम जिस आत्मा की उपासना करते हो यह निश्चय ही 'सुतेजा' नाम से प्रसिद्ध वैश्वानर आत्मा है, इसी से तुम्हारे कुल में सुत, प्रसुत और आसुत दिखाई देते हैं' ।1।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूधा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ ५.१२.२॥

'तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय का दर्शन करते हो । जो इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रिय का दर्शन करता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है । यह वैश्वानर आत्मा का मस्तक है ।' ऐसा राजा ने कहा, और यह भी कहा कि 'यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा मस्तक गिर जाता' ।2।

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

॥ त्रयोदश खण्ड ॥

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य कं

त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति

होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं

त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले

दृश्यते ॥ ५.१३.१॥

फिर उसने पुलुष के पुत्र सत्ययज्ञ से कहा- 'हे प्राचीनयोग्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ?' वह बोला- 'हे पूज्य राजन् ! मैं

आदित्य की ही उपासना करता हूँ ।' राजा ने कहा- 'यह निश्चय ही विश्वरूप वैश्वानर आत्मा है, जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, इसी से तुम्हारे कुल में बहुत-सा विश्वरूप साधन दिखाई देता है' ।1।

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि
प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले
य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुषेतदात्मन इति
होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नागमिष्य इति ॥ ५.१३.२॥

'खच्चरियों से जुता हुआ रथ और दासियों के सहित हार प्रवृत्त है । तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय का दर्शन करते हो । जो इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रिय का दर्शन करता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है । किन्तु यह वैश्वानर आत्मा का नेत्र ही है ।' ऐसा राजा ने कहा, और यह भी कहा कि 'यदि तुम मेरे पास न आते तो अन्धे हो जाते' ।2।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

॥ चतुर्दश खण्ड ॥

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं
त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति
होवाचैष वै पृथग्वर्त्मात्मा वैश्वानरो यं
त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति
पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ॥ ५.१४.१॥

फिर उसने भल्लवेय इन्द्रद्युम्न से कहा- 'हे वैयाघ्रपद्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ?' वह बोला- 'हे पूज्य राजन् ! मैं वायु की ही उपासना करता हूँ ।' राजा ने कहा- 'यह निश्चय ही प्रथग्वर्त्मा वैश्वानर आत्मा है, जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, इसी से तुम्हारे प्रति प्रथक-प्रथक उपहार आते है और तुम्हारे पीछे प्रथक-प्रथक रथ की पंक्तियाँ चलती हैं' ।1।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य

ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते
प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त
उदक्रमिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ ५.१४.२॥

'तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय का दर्शन करते हो। जो इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रिय का दर्शन करता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है। किन्तु यह वैश्वानर आत्मा का प्राण ही है।' ऐसा राजा ने कहा, और यह भी कहा कि 'यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा प्राण उत्क्रमण कर जाता' ।2।

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

॥ पञ्चदश खण्ड ॥

अथ होवाच जनꣳशार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स

इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै बहुल

आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपस्से तस्मात्त्वं

बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ॥ ५.१५.१॥

फिर राजा ने जन से कहा- 'हे शार्कराक्ष्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ?' वह बोला- 'हे पूज्य राजन् ! मैं आकाश की ही उपासना करता हूँ ।' राजा ने कहा- 'यह निश्चय ही बहुलसंज्ञक वैश्वानर आत्मा है, जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, इसी से तुम प्रजा और धन के कारण बहुल हो' ।1।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य

ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते

संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्यशीर्यद्यन्मां

नागमिष्य इति ॥ ५.१५.२॥

'तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय का दर्शन करते हो । जो इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रिय का दर्शन करता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है । किन्तु यह वैश्वानर आत्मा के संदेह(शरीर का मध्यभाग) ही है ।' ऐसा राजा ने कहा, और यह भी कहा कि 'यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा संदेह(शरीर का मध्यभाग) नष्ट हो जाता' ।2।

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

॥ षोडश खण्ड ॥

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं
त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष
वै रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से
तस्मात्त्वꣳरयिमान्पुष्टिमानसि ॥ ५.१६.१॥

फिर उसने अश्वतराश्व के पुत्र बुडिल से कहा- 'हे वैयाघ्रपद्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ?' वह बोला- 'हे पूज्य राजन् ! मैं तो जल की ही उपासना करता हूँ ।' राजा ने कहा- 'यह निश्चय ही रयिसंज्ञक वैश्वानर आत्मा है, जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, इसी से तुम रयिमान और पुष्टिमान हो' ।1।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य
ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते
बस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच बस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां

नागमिष्य इति ॥ ५.१६.२॥

‘तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय का दर्शन करते हो । जो इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रिय का दर्शन करता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है । किन्तु यह वैश्वानर आत्मा का बस्ति ही है ।’ ऐसा राजा ने कहा, और यह भी कहा कि ‘यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा बस्तिस्थान फट जाता’ ।2।

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

॥ सप्तदश खण्ड ॥

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मानमुपस्स

इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै

प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से

तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च ५.१७.१॥

फिर उसने अरुण के पुत्र उद्दालक से कहा- 'हे गौतम ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ?' वह बोला- 'हे पूज्य राजन् ! मैं तो पृथ्वी की ही उपासना करता हूँ ।' राजा ने कहा- 'यह निश्चय ही प्रतिष्ठासंज्ञक वैश्वानर आत्मा है, जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, इसी से तुम प्रजा और पशुओं के कारण प्रतिष्ठित हो' ।1।

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य

ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते

पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां

यन्मां नागमिष्य इति ५.१७.२॥

‘तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय का दर्शन करते हो । जो इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रिय का दर्शन करता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है । किन्तु यह वैश्वानर आत्मा के चरण ही हैं ।’ ऐसा राजा ने कहा, और यह भी कहा कि ‘यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारे चरण शिथिल हो जाते’ ।2।

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

॥ अष्टादश खण्ड ॥

तान्होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाꣳसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥ ५.१८.१॥

राजा ने उनसे कहा- 'तुम ये सब लोग इस वैश्वानर आत्मा को अलग-सा जानकर अन्न भक्षण करते हो । जो कोई 'यही मैं हूँ' इस प्रकार अभिमान का विषय होने वाले इस प्रादेशमात्र वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है वह समस्त लोकों में, समस्त प्राणियों में और समस्त आत्माओं में अन्न भक्षण करता है' ।1।

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥ ५.१८.२॥

उस इस वैश्वानर आत्मा का मस्तक ही सुतेजा (द्युलोक) है, चक्षु ही विश्वरूप (सूर्य) है, प्राण प्रथग्वर्त्मा (वायु) है, देह का मध्यभाग बहुल (आकाश) है, बस्ति ही रयि (जल) है, पृथ्वी ही दोनों चरण हैं, वक्षःस्थल वेदी है, लोम दर्भ है, हृदय गार्हपत्याग्नि है, मन अन्वाहार्यपचन है, और मुख आहवनीय है ।2।

॥ इति अष्टादशः खण्डः ॥

॥ एकोनविंश खण्ड ॥

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ स यां

प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति

प्राणस्तृप्यति ॥ ५.१९.१॥

अतः जो अन्न पहले आवे, उसका हवन करना चाहिए, उस समय वह भोक्ता जो पहली आहुति दे उसे 'प्राणाय स्वाहा' ऐसा कहकर दे । इस कारण प्राण तृप्त होता है ।1।

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि

तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति

दिवि तृप्यन्त्यां यत्किंच द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति

तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा

ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ ५.१९.२॥

प्राण के तृप्त होने पर नेत्रेन्द्रिय तृप्त होती है, नेत्रेन्द्रिय के तृप्त होने पर सूर्य तृप्त होता है, सूर्य के तृप्त होने पर द्युलोक तृप्त होता है तथा द्युलोक के तृप्त होने पर जिस किसी पर द्युलोक और आदित्य अधिष्ठति हैं वह तृप्त होता है और उसकी तृप्ति होने पर स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज के द्वारा तृप्त होता है ।2।

॥ इति एकोनविंशः खण्डः ॥

॥ विंश खण्ड ॥

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥५.२०.१॥

तत्पश्चात जो दूसरी आहुति दे उसे 'व्यानाय स्वाहा' ऐसा कहकर दे । इससे व्यान तृप्त होता है ।1।

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किंच दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ ५.२०.२॥

व्यान के तृप्त होने पर श्रोत्रेन्द्रिय तृप्त होती है, श्रोत्रेन्द्रिय के तृप्त होने पर चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमा के तृप्त होने पर दिशाएँ तृप्त होती हैं तथा दिशाओं के तृप्त होने पर जिस किसी पर चन्द्रमा और दिशाएँ अधिष्ठति हैं वह तृप्त होता है और उसकी तृप्ति होने पर स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज के द्वारा तृप्त होता है ।2।

॥ इति विंशः खण्डः ॥

॥ एकविंश खण्ड ॥

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय

स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥ ५.२१.१॥

तत्पश्चात जो तीसरी आहुति दे उसे 'अपानाय स्वाहा' ऐसा कहकर दे । इससे अपान तृप्त होता है ।1।

अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ

तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किंच
पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति
तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा
ब्रह्मवर्चसेनेति ॥ ५.२१.२॥

अपान के तृप्त होने पर वागिन्द्रिय तृप्त होती है, वाक् के तृप्त होने पर अग्नि तृप्त होता है, अग्नि के तृप्त होने पर पृथ्वी तृप्त होती है तथा पृथ्वी के तृप्त होने पर जिस किसी पर पृथ्वी और अग्नि अधिष्ठित हैं वह तृप्त होता है और उसकी तृप्ति होने पर स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज के द्वारा तृप्त होता है ।2।

॥ इति एकविंशः खण्डः ॥

॥ द्वाविंश खण्ड ॥

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति

समानस्तृप्यति ॥ ५.२२.१॥

तत्पश्चात जो चौथी आहुति दे उसे 'समानाय स्वाहा' ऐसा कहकर दे । इससे समान तृप्त होता है ।1।

समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति

पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किंच

विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं

तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति

॥ ५.२२.२ ॥

समान के तृप्त होने पर मन तृप्त होता है, मन के तृप्त होने पर पर्जन्य तृप्त होता है, पर्जन्य के तृप्त होने पर विद्युत तृप्त होती है तथा विद्युत के तृप्त होने पर जिस किसी पर विद्युत और पर्जन्य अधिष्ठति हैं वह तृप्त होता है और उसकी तृप्ति होने पर स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज के द्वारा तृप्त होता है ।2।

॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

॥ त्रयोविंश खण्ड ॥

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय

स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥ ५.२३.१॥

तत्पश्चात जो पांचवीं आहुति दे उसे 'उदानाय स्वाहा' ऐसा कहकर दे । इससे उदान तृप्त होता है ।1।

उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति

वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किंच

वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं

तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेन

॥ ५.२३.२॥

उदान के तृप्त होने पर त्वचा तृप्त होती है, त्वचा के तृप्त होने पर वायु तृप्त होता है, वायु के तृप्त होने पर आकाश तृप्त होता है तथा आकाश के तृप्त होने पर जिस किसी पर वायु और आकाश अधिष्ठति हैं वह तृप्त होता है और उसकी तृप्ति होने पर स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज के द्वारा तृप्त होता है ।2।

॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

॥ चतुर्विंश खण्ड ॥

स य इदमविद्वाग्निहोत्रं जुहोति यथाङ्गारानपोह्य

भस्मनि जुहुयात्ताद्दक्तत्स्यात् ॥ ५.२४.१॥

वह जो कि इस वैश्वानर विद्या को न जानकर हवन करता है उसका वह यज्ञ ऐसा है, जैसे अंगारों को हटाकर भस्म में हवन करे ।1।

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु

सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥ ५.२४.२॥

क्योंकि जो इस वैश्वानर को इस प्रकार जानने वाला पुरुष अग्निहोत्र करता है उसका समस्त लोक, सारे भूत और सम्पूर्ण आत्माओं में हवन हो जाता है ।2।

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवꣳहास्य सर्वे

पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति

॥ ५.२४.३॥

इस विषय में यह दृष्टांत भी है- जिस प्रकार सींक का अग्रभाग अग्नि में घुसा देने तत्काल जल जाता है उसी प्रकार जो इस प्रकार जानने वाला होकर अग्निहोत्र करता है उसके समस्त पाप भस्म हो जाते हैं ।3।

तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं

प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतꣳ स्यादिति

तदेष श्लोकः ॥ ५.२४.४॥

अतः वह इस प्रकार जानने वाला यदि चाण्डाल को उच्छिष्ट भी दे तो भी उसका वह अन्न वैश्वानर आत्मा में ही हुत होगा । इस विषय में यह मन्त्र है ।4।

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासत एवꣳ सर्वाणि

भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥ ५.२४.५॥

जिस प्रकार इस लोक में भूखे बालक सब प्रकार माता की उपासना करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणी इस ज्ञानी के भोजनरूप अग्निहोत्र की उपासना करते हैं, अग्निहोत्र की उपासना करते हैं ।5।

॥ इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

॥ षष्ठोऽध्यायः षष्ठ अध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो
वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य
ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ॥ ६.१.१॥

अरुण का सुप्रसिद्ध पौत्र श्वेतकेतु था, उससे पिता ने कहा- 'हे श्वेतकेतो ! तू ब्रह्मचर्यवास कर, क्योंकि, हे सोम्य ! हमारे कुल में उत्पन्न हुआ कोई पुरुष अध्ययन न करके ब्रह्मबन्धु सा नहीं होता' ।1।

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंꣳशतिवर्षः
सर्वान्वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध
एयाय तꣳह पितोवाच ॥ ६.१.२॥

वह श्वेतकेतु बारह वर्ष की अवस्था में उपनयन कराकर चौबीस वर्ष का होने पर सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर अपने को बड़ा बुद्धिमान

और व्याख्या करने वाला मानते हुए उद्दण्डभाव से घर लौटा। उससे पिता ने कहा- 'हे सोम्य ! तू जो ऐसा महामना, पण्डितम्मन्य और अविनीत है सो क्या तूने वह आदेश पूछा है ?' ।2।

श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी

स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः येनाश्रुतꣳ श्रुतं

भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः

स आदेशो भवतीति ॥ ६.१.३॥

'जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विशेषरूप से ज्ञात हो जाता है ।' यह सुनकर श्वेतकेतु ने पूछा- 'भगवन् ! वह आदेश कैसा है ?' ।3।

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ

स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्

॥ ६.१.४॥

हे सोम्य ! जिस प्रकार एक मृत्तिका के पिण्ड के द्वारा सम्पूर्ण मृन्मय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि विकार केवल वाणी के आश्रयभूत नाममात्र हैं, सत्य तो केवल मृत्तिका ही है ।4।

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातः

स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव

सत्यम् ॥ ६.१.५॥

हे सोम्य ! जिस प्रकार एक लोहमणि का ज्ञान होने पर सम्पूर्ण लोहमय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि विकार केवल वाणी के आश्रयभूत नाममात्र हैं, सत्य तो केवल सुवर्ण ही है ।5।

यथा सोम्यिकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातः

स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव

सत्यमेवःसोम्य स आदेशो भवतीति ॥ ६.१.६॥

हे सोम्य ! जिस प्रकार एक नखकृन्तन का ज्ञान होने पर सम्पूर्ण लोहे के पदार्थों का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि विकार केवल वाणी के आश्रयभूत नाममात्र हैं, सत्य तो केवल लोहा ही है । हे सोम्य ! ऐसा ही वह आदेश भी है ।6।

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन्कथं

मे नावक्ष्यन्निति भगवाꣳस्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा

सोम्येति होवाच ॥ ६.१.७॥

'निश्चय ही वे मेरे पूज्य गुरुदेव इसे नहीं जानते थे । यदि वे जानते तो मुझसे क्यों न कहते । अब आप ही मुझे बतलाइए ।' तब पिता ने कहा- 'अच्छा सोम्य ! बतलाता हूँ' ।7।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ।

तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं

तस्मादसतः सज्जायत ॥ ६.२.१॥

हे सोम्य ! आरम्भ में यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था । उसी के विषय में किन्हीं ने ऐसा भी कहा कि आरम्भ में यह एकमात्र अद्वितीय असत् ही था । उस असत् से सत् की उत्पत्ति होती है ।1।

कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳस्यादिति होवाच कथमसतः

सज्जायेतेति। सत्त्वेव सोम्येदमग्र

आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ ६.२.२॥

'किन्तु हे सोम्य ! ऐसा कैसे हो सकता है, भला असत् से सत् की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? अतः हे सोम्य ! आरम्भ में यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था' ऐसा आरुणि ने कहा ।2।

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज

ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत ।

तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव

तदध्यापो जायन्ते ॥ ६.२.३॥

उसने इच्छा की 'मैं बहुत हो जाऊँ- अनेक प्रकार से उत्पन्न होऊँ' । इस प्रकार उसने तेज की रचना की । उस तेज ने इच्छा की 'मैं बहुत हो जाऊँ- अनेक प्रकार से उत्पन्न होऊँ' । इस प्रकार उसने जल की रचना की । इसी से जहाँ कहीं पुरुष शोक करता है उसे पसीने आ जाते हैं । उस समय वह तेज से ही जल की उत्पत्ति होती है ।3।

ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता

अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं

भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ६.२.४॥

उस जल ने इच्छा की 'मैं बहुत हो जाऊँ- अनेक प्रकार से उत्पन्न होऊँ' । इस प्रकार उसने अन्न की रचना की । इसी से जहाँ कहीं वर्षा होती है वहीं बहुत-सा अन्न होता है । वह अन्नाद्य जल से ही उत्पन्न होता है ।4।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ तृतीय खण्ड ॥

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति ॥ ६.३.१॥

उन इन प्रसिद्ध प्राणियों के तीन ही बीज होते हैं- 'आण्डज, जीवज और उद्भिज्ज' ।1।

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥ ६.३.२॥

उस सत् नामक देवता ने ईक्षण किया, 'मैं इस जीवात्मरूप से इन तीनों देवताओं में अनुप्रवेश कर नाम और रूप की अभिव्यक्ति करूँ' ।2।

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ॥ ६.३.३॥

'और उनमें से एक-एक देवता को त्रिवृत्-त्रिवृत् करूँ' ऐसा विचार कर उस इस देवता ने इस जीवात्मरूप से ही उन तीन देवताओं में प्रवेश कर नामरूप का व्याकरण किया ।3।

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा तु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ६.३.४ ॥

उस देवता ने उनमें से प्रत्येक को त्रिवृत्-त्रिवृत् किया । हे सोम्य ! जिस प्रकार ये तीनों देवता एक-एक करके प्रत्येक त्रिवृत्-त्रिवृत् हैं वह मेरे द्वारा जान ।4।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

यदग्ने रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ६.४.१॥

अग्नि का जो रोहित रूप है वह तेज का ही रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जल का है और जो कृष्ण है वह अन्न का है । इस प्रकार अग्नि से अग्नित्व निवृत्त हो गया, क्योंकि विकार वाणी से कहने के लिए नाममात्र हैं, केवल तीन रूप हैं- इतना ही सत्य है ।1।

यदादित्यस्य रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ६.४.२॥

आदित्य का जो रोहित रूप है वह तेज का ही रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जल का है और जो कृष्ण है वह अन्न का है । इस प्रकार आदित्य से आदित्यत्व निवृत्त हो गया, क्योंकि विकार वाणी पर अवलम्बित नाममात्र हैं, केवल तीन रूप हैं- इतना ही सत्य है ।2।

यच्छन्द्रमसो रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपांयत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ६.४.३॥

चन्द्रमा का जो रोहित रूप है वह तेज का ही रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जल का है और जो कृष्ण है वह अन्न का है। इस प्रकार चन्द्रमा से चंद्रत्व निवृत्त हो गया, क्योंकि विकार वाणी पर अवलम्बित नाममात्र हैं, केवल तीन रूप हैं- इतना ही सत्य है।3।

यद्विद्युतो रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥ ६.४.४॥

विद्युत का जो रोहित रूप है वह तेज का ही रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जल का है और जो कृष्ण है वह अन्न का है। इस प्रकार विद्युत से विद्युत्त्व निवृत्त हो गया, क्योंकि विकार वाणी पर अवलम्बित नाममात्र हैं, केवल तीन रूप हैं- इतना ही सत्य है।4।

एतद्ध स्म वै तद्विद्वाꣳस आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदांचक्रुः ॥६.४.५॥

इसको जानने वाले पूर्ववर्ती महागृहस्थ और महाश्रोत्रियों ने यह कहा था कि इस समय हमारे कुल में कोई बात अश्रुत, अमत अथवा अविज्ञात है- ऐसा कोई नहीं कह सकेगा, क्योंकि इन अग्नि आदि के दृष्टांत द्वारा वे सब कुछ जानते थे।5।

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदांचक्रुर्यदु
शुक्लमिवाभूदित्यपाꣳरूपमिति तद्विदांचक्रुर्यदु
कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदांचक्रुः ॥ ६.४.६॥

जो कुछ रोहित सा है वह तेज का रूप है- ऐसा उन्होंने जाना है, जो कुछ शुक्ल सा है वह जल का रूप है- ऐसा उन्होंने जाना है तथा जो कुछ कृष्ण सा है वह अन्न का रूप है- ऐसा उन्होंने जाना है ।6।

यद्वविज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानाꣳसमास इति
तद्विदांचक्रुर्यथा तु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य
त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥ ६.४.७॥

तथा जो कुछ विज्ञात सा है वह इन देवताओं का ही समुदाय है- ऐसा उन्होंने जाना है । हे सोम्य ! अब तू मेरे द्वारा यह जान कि किस प्रकार ये तीनों देवता पुरुष को प्राप्त होकर उनमें से प्रत्येक त्रिवृत्-त्रिवृत् हो जाता है ।7।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ पञ्चम खण्ड ॥

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो

धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माꣳसं

योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥ ६.५.१॥

खाया हुआ अन्न तीन प्रकार का हो जाता है । उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है, वह मल हो जाता है, जो मध्यम भाग होता है, वह मांस हो जाता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म भाग होता है वह मन हो जाता है ।1।

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो

धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः

स प्राणः ॥ ६.५.२॥

पीया हुआ जल तीन प्रकार का हो जाता है । उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है, वह मूत्र हो जाता है, जो मध्यम भाग होता है, वह रक्त हो जाता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म भाग होता है वह प्राण हो जाता है ।2।

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो

धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा

योऽणिष्ठः सा वाक् ॥ ६.५.३॥

खाया हुआ तेज तीन प्रकार का हो जाता है । उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है, वह हड्डी हो जाता है, जो मध्यम भाग होता है, वह मज्जा हो जाता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म भाग होता है वह वाक् हो जाता है ।3।

अन्नमयꣳहि सोम्य मनः आपोमयः प्राणस्तेजोमयी

वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा

सोम्येति होवाच ॥ ६.५.४॥

हे सोम्य ! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजोमयी है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।4।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

॥ षष्ठ खण्ड ॥

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स उर्ध्वः समुदीषति

तत्सर्पिर्भवति ॥ ६.६.१॥

हे सोम्य ! मथे हुए दही का जो सूक्ष्म भाग होता है वह ऊपर इक्कट्ठा हो जाता है, वह घृत होता है ।1।

एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स उर्ध्वः

समुदीषति तन्मनो भवति ॥ ६.६.२॥

उसी प्रकार हे सोम्य ! खाये हुए अन्न का जो सूक्ष्म अंश होता है वह सम्यक् प्रकार से ऊपर आ जाता है, वह मन होता है ।2।

अपाꣳसोम्य पीयमानानां योऽणिमा स उर्ध्वः समुदीषति

सा प्राणो भवति ॥ ६.६.३ ॥

हे सोम्य ! पीये हुए जल का जो सूक्ष्म अंश होता है वह सम्यक् प्रकार से इकट्ठा होकर ऊपर आ जाता है, वह प्राण होता है ।3।

तेजसः सोम्याश्यमानस्य योऽणिमा स उर्ध्वः समुदीषति

सा वाग्भवति ॥ ६.६.४॥

हे सोम्य ! भक्षण किये हुए तेज का जो सूक्ष्म अंश होता है वह सम्यक् प्रकार से इकट्ठा होकर ऊपर आ जाता है, वह वाणी होता है ।4।

अन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति

भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच

॥ ६.६.६॥

हे सोम्य ! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजोमयी है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।5।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

॥ सप्तम खण्ड ॥

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः
काममपः पिबापोमयः प्राणो नपिबतो विच्छेत्स्यत
इति ॥ ६.७.१॥

हे सोम्य ! पुरुष सोलह कलाओं वाला है । तू पन्द्रह दिन भोजन मत कर, केवल यथेच्छ जलपान कर । प्राण जलमय है, इसलिए जल पीते रहने से उसका नाश नहीं होगा ।1।

स ह पञ्चदशाहानि नशाथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि
भो इत्यृचः सोम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै
मा प्रतिभान्ति भो इति ॥ ६.७.२॥

उसने पन्द्रह दिन भोजन नहीं किया । तत्पश्चात वह आरुणि के पास आया और कहा- ‘भगवन् ! क्या बोलूँ ?’ पिता ने कहा- ‘हे सोम्य !

ऋक्, यजुः और साम का पाठ करो' । तब उसने कहा- 'भगवन् ! मुझे उनका प्रतिभान नहीं होता' ।2।

तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्या हितस्यैकोऽङ्गारः

खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु

दहेदेवꣳसोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टा

स्यात्तयैतर्हि वेदान्नानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति

॥ ६.७.३॥

वह उससे बोला- 'हे सोम्य ! जिस प्रकार बहुत से ईंधन से प्रज्वलित हुए अग्नि का एक जुगनू के बराबर अंगारा रह जाये तो वह उससे अधिक दाह नहीं कर सकता, उसी प्रकार हे सोम्य ! तेरी सोलह कलाओं में से एक ही कला रह गयी है । उसके द्वारा इस समय तू वेद का अनुभव नहीं कर सकता । अच्छा, अब भोजन कर, तब तू मेरी बात समझ जाएगा' ।3।

स हशाथ हैनमुपससाद तꣳ ह यत्किंच पप्रच्छ

सर्वꣳह प्रतिपेदे ॥ ६.७.४॥

उसने भोजन किया और पिता के पास आया । तब उसने जो कुछ पूछा वह सब उसे उपस्थित हो गया ।4।

तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं

खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय

प्राज्वलयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥ ६.७.५॥

उससे पिता ने कहा- 'हे सोम्य ! जिस प्रकार बहुत से ईंधन से बढ़े हुए अग्नि का एक खद्योतमात्र अंगारा रह जाये और उसे तृण से सम्पन्न कर प्रज्वलित कर दिया जाए तो वह उसकी अपेक्षा भी अधिक दाह कर सकता है' ।5।

एवꣳ सोम्य ते षोडशानां कलानामेका

कलातिशिष्टाभूत्साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वाली

तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳहि सोम्य मन आपोमयः

प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति

॥ ६.७.६॥

‘इसी प्रकार हे सोम्य ! तेरी सोलह कलाओं में से एक कला अवशिष्ट रह गयी थी । वह अन्न द्वारा प्रज्वलित कर दी गयी । अब उसी से तू वेदों का अनुभव कर रहा है । अतः हे सोम्य ! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजोमय है’ । इस प्रकार वह उसके इस कथन को विशेषरूप से समझ गया, समझ गया ।6।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

॥ अष्टम खण्ड ॥

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य
विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा
सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनꣳ
स्वपितीत्याचक्षते स्वꣳह्यपीतो भवति ॥ ६.८.१॥

उद्दालक के नाम से प्रसिद्ध अरुण के पुत्र ने श्वेतकेतु से कहा- 'हे सोम्य ! तू मेरे द्वारा स्वप्रान्त को विशेषरूप से समझ ले, जिस अवस्था मे यह पुरुष 'सोता है' ऐसा कहा जाता है, उस समय हे सोम्य ! यह सत् से सम्पन्न हो जाता है- यह अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है । इसी से इसे 'स्वपिति' ऐसा कहते हैं, क्योंकि उस समय यह स्व- अपने को ही अपीत- प्राप्त हो जाता है ।1।

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं
पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत

एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं

पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते

प्राणबन्धनꣳ हि सोम्य मन इति ॥ ६.८.२ ॥

जिस प्रकार डोरी में बँधा हुआ पक्षी दिशा-विदिशाओं में उड़कर अन्यत्र स्थान न मिलने पर अपने बन्धनस्थान का ही आश्रय लेता है इसी प्रकार निश्चय ही हे सोम्य ! यह मन दिशा-विदिशाओं में उड़कर अन्यत्र स्थान न मिलने से प्राण का ही आश्रय लेता है, क्योंकि हे सोम्य ! मन प्राणरूप बन्धन वाला ही है ।2।

अशनापिपासे मे सोम्य विजानीहीति

यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाप एव तदशितं नयन्ते

तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप

आचक्षतेऽशनायेति तत्रितच्छुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य

विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ६.८.३॥

‘हे सोम्य ! तू मेरे द्वारा अशना (भूख) और पिपासा (प्यास) को जान । जिस समय यह पुरुष ‘खाना चाहता है’ ऐसे नाम वाला होता है, उस समय जल ही इसके भक्षण किये हुए अन्न को ले जाता है । जिस प्रकार लोक में गौनाय, अश्वनाय और पुरुषनाय कहते हैं । उसी प्रकार जल को ‘अशनाय’ ऐसा कहकर पुकारते हैं । हे सोम्य ! उस जल से ही तू इस शरीर रूपी अंकुर को उत्पन्न हुआ समझ, क्योंकि यह निर्मूल नहीं हो सकता ।3।

तस्य क्व मूलꣷ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन

शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो

मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ

सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः

सत्प्रतिष्ठाः ॥ ६.८.४॥

अन्न को छोड़कर इसका मूल और कहाँ हो सकता है ? इसी प्रकार हे सोम्य ! तू अन्नरूप अंकुर के द्वारा जलरूप मूल को खोज और हे सोम्य ! जलरूप अंकुर के द्वारा तेजोरूप मूल को खोज तथा तेजोरूप अंकुर के द्वारा सद्रूप मूल का अनुसंधान कर । हे सोम्य !

इस प्रकार यह सारी प्रजा सन्मूलक है तथा सत् ही इसका आश्रय है और सत् ही प्रतिष्ठा है ।4।

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते

तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज

आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣷ सोम्य

विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥ ६.८.५॥

अब जिस समय यह पुरुष 'पीना चाहता है' ऐसे नाम वाला होता है, उस समय तेज ही इसके पीये हुए जल को ले जाता है । अतः जिस प्रकार लोक में गौनाय, अश्वनाय और पुरुषनाय कहते हैं । उसी प्रकार तेज को 'उदन्या' ऐसा कहकर पुकारते हैं । हे सोम्य ! उस जलरूप मूल से यह शरीररूप अंकुर उत्पन्न हुआ है- ऐसा जान, क्योंकि यह निर्मूल नहीं हो सकता ।5।

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्राद्भ्य्ऽद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो

मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ

सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा

यथा तु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य

त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य

सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे

प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥ ६.८.६॥

हे सोम्य ! शरीर का जल के सिवा और कहाँ मूल हो सकता है ? हे प्रियदर्शन ! जलरूप अंकुर के द्वारा तू तेजोरूप मूल की खोज कर और हे सोम्य ! तेजोरूप अंकुर के द्वारा सद्रूप । मूल की शोध कर । हे सोम्य ! यह सम्पूर्ण प्रजा सन्मूल के तथा सद्रूप आयतन और सद्रूप प्रतिष्ठा वाली है । हे सोम्य ! जिस प्रकार ये तीनों देवता पुरुष को प्राप्त होकर उनमें से प्रत्येक त्रिवृत्-त्रिवृत् हो जाता है वह मैंने पहले ही कह दिया । हे सोम्य ! मरण को प्राप्त होते हुए इस पुरुष की वाक् मन में लीन हो जाती है तथा मन में प्राण, प्राण तेज में और तेज परदेवता में लीन हो जाता है ।6।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स

आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा

भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ६.८.७॥

वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।7।

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

॥ नवम खण्ड ॥

यथा सोम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां

वृक्षाणाꣳरसान्समवहारमेकताꣳरसं गमयन्ति ॥ ६.९.१॥

हे सोम्य ! जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मधु निष्पन्न करती हैं तो नाना वृक्षों का रस लाकर एकता को प्राप्त करा देती हैं ।1।

ते यथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्य

रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु

सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति सम्पद्य न विदुः सति

सम्पद्यामह इति ॥ ६.९.२ ॥

जिस प्रकार वे रस उस मधु में यह विवेक प्राप्त नहीं कर सकते कि 'मैं इस वृक्ष का रस हूँ और मैं इस वृक्ष का रस हूँ' हे सोम्य ! ठीक

इसी प्रकार यह प्रजा सत् को प्राप्त होकर यह नहीं जानती कि हम सत् को प्राप्त हो गए ।2।

त इह व्यघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा

पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति

॥ ६.९.३ ॥

वे इस लोक में व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, शूकर, कीट, पतंग, डाँस, अथवा मच्छर जो-जो भी होते हैं, वे ही पुनः हो जाते हैं ।3।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा

तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति

तथा सोम्येति होवाच ॥ ६.९.४॥

वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला-

'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।4।

॥ इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशम खण्ड ॥

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते

पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र

एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति

॥ ६.१०.१॥

हे सोम्य ! ये नदियाँ पूर्ववाहिनी होकर पूर्व की ओर बहती हैं तथा पश्चिमवाहिनी होकर पश्चिम की ओर । वे समुद्र से निकलकर फिर समुद्र में ही मिल जाती हैं और वह समुद्र ही हो जाता है । वे सब जिस प्रकार वहाँ यह नहीं जानतीं की 'यह मैं हूँ, यह मैं हूँ' ।1।

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः

सत आगच्छामह इति त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा

वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा

यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥ ६.१०.२॥

ठीक इसी प्रकार यह समस्त प्रजा सत् से आने पर यह नहीं जानती कि हम सत् से आये हैं । वे इस लोक में व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, शूकर, कीट, पतंग, डाँस, अथवा मच्छर जो-जो भी होते हैं, वे ही पुनः हो जाते हैं ।2।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा

तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति

तथा सोम्येति होवाच ॥ ६.१०.३॥

वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।3।

॥ इति दशमः खण्डः ॥

॥ एकादश खण्ड ॥

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो
मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स
एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति
॥ ६.११.१॥

हे सोम्य ! यदि कोई इस महान् वृक्ष के मूल में आघात करे तो यह जीवित रहते हुए ही केवल रक्तस्राव करेगा, यदि मध्य में आघात करे तो भी यह जीवित रहते हुए केवल रक्तस्राव करेगा और यदि इसके अग्रभाग में आघात करे तो भी यह जीवित रहते हुए ही रक्तस्राव करेगा । यह वृक्ष जीव-आत्मा से ओतप्रोत है और जलपान करता हुआ आनन्द से स्थित है ।1।

अस्य यदेकाꣳ शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति
द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा
शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति ॥ ६.११.२॥

यदि इस वृक्ष की एक शाखा को जीव छोड़ देता है तो वह सूख जाती है, यदि दूसरी को छोड़ देता है तो वह सूख जाती है, और यदि तीसरी को छोड़ देता है तो वह भी सूख जाती है, इसी प्रकार यदि सारे वृक्ष को छोड़ देता है तो सारा वृक्ष सूख जाता है ।2।

एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच जीवापेतं वाव किलेदं
म्रियते न जीवो म्रियते इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ
सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव
मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ६.११.३॥

'हे सोम्य ! ठीक इसी प्रकार तू जान कि जीव से रहित होने पर यह शरीर मर जाता है, जीव नहीं मरता'- 'वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है' । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।3।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

॥ द्वादश खण्ड ॥

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्द्धीति भिन्नं
भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव
इत्यासामङ्गैकां भिन्द्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र
पश्यसीति न किंचन भगव इति ॥ ६.१२.१॥

'इस वृक्ष से एक बड़ का फल ले आ ।'-'भगवन् ! यह ले आया ।'-'इसे फोड़ ।' भगवन् ! फोड़ दिया'-'इसमें क्या देखता है ?'-'भगवन् ! इसमें ये अणु के समान दाने हैं ।'-'अच्छा वत्स ! इनमें से एक को फोड़ ।'-'फोड़ दिया भगवन् !'-'इसमें क्या देखता है'-'कुछ नहीं भगवन् !' ।1।

तꣳ होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयस
एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति
श्रद्धत्स्व सोम्येति ॥ ६.१२.२॥

तब उससे कहा- 'हे सोम्य ! इस वटबीज की जिस अणिमा को तू नहीं देखता, हे सोम्य ! उस अणिमा का ही यह इतना बड़ा वटवृक्ष खड़ा हुआ है । हे सोम्य ! तू श्रद्धा कर' ।2।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदद्ँ सर्वं तत्सत्यँ स आत्मा

तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति

तथा सोम्येति होवाच ॥ ६.१२.३॥

वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।3।

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

॥ त्रयोदश खण्ड ॥

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति
स ह तथा चकार तꣳ होवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवाधा
अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद ॥ ६.१३.१॥

इस नमक को जल में डालकर कल प्रातःकाल मेरे पास आना । आरुणि के इस प्रकार कहने पर श्वेतकेतु ने वैसा ही किया । तब आरुणि ने उससे कहा- 'वत्स ! रात तुमने जो नमक जल में डाला था उसे ले आओ ।' किन्तु उसने ढूँढने पर वह नमक उसमें न पाया ।1।

यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति
मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति
कथमिति लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ मोपसीदथा इति
तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्तते तꣳ होवाचात्र
वाव किल तत्सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति ॥ ६.१३.२॥

'इस जल को ऊपर से आचमन कर' 'कैसा है ?' -'नमकीन है' -'बीच में से आचमन कर' 'अब कैसा है' -'नमकीन है' -'नीचे से आचमन कर' 'अब कैसा है' -'नमकीन है' -'अच्छा अब इस जल को फेंककर मेरे पास आ ।' उसने वैसा ही किया और बोला- 'उसमें नमक सदा ही विद्यमान था ।' तब पिता ने उससे कहा- 'हे सोम्य ! जिस प्रकार वह नमक इसमें विलीन हो गया है, इसी प्रकार वह सत् भी निश्चय यहीं विद्यमान है, तू उसे देखता नहीं है, परन्तु वह निश्चय यहीं विद्यमान है' ।2।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा

तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति

तथा सोम्येति होवाच ॥ ६.१३.३॥

वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।3।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

॥ चतुर्दश खण्ड ॥

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं
ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ्वोदङ्वाधराङ्वा
प्रत्यङ्वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो
विसृष्टः ॥ ६.१४.१॥

हे सोम्य ! जिस प्रकार कोई पुरुष जिसकी आँखें बँधी हुई हों, ऐसे पुरुष को गान्धारदेश से ले जाकर किसी जनशून्य स्थान में छोड़ दे । उस जगह जिस प्रकार वह पूर्व, उत्तर, दक्षिण अथवा पश्चिम की ओर मुख करके चिल्लावे कि 'मुझे आँखें बाँधकर यहाँ लाया गया है और आँखे बँधे ही छोड़ दिया है' ।1।

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा
एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन्पण्डितो मेधावी
गन्धारानेवोपसम्पद्येतैवमेवेहाचार्यवान्पुरुषो वेद

तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति

॥ ६.१४.२॥

उस पुरुष के बन्धन को खोलकर जैसे कोई कहे कि 'गान्धारदेश इस दिशा में है, अतः इसी दिशा को जा,' तो वह बुद्धिमान और समझदार पुरुष एक ग्राम से दूसरा ग्राम पूछते हुए गान्धार में ही पहुँच जाता है, इसी प्रकार इस लोक में आचार्यवान पुरुष ही सत् को जानता है, उसके लिए उतना ही विलम्ब है जब तक कि वह देहबन्धन से मुक्त नहीं होता । उसके पश्चात् तो वह सत्सम्पन्न हो जाता है ।2।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा

तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति

तथा सोम्येति होवाच ॥ ६.१४.३॥

वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।3।

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

॥ पञ्चदश खण्ड ॥

पुरुषꣳ सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति ॥ ६.१५.१॥

हे सोम्य ! ज्वरादि से सन्तप्त मुमूर्षु पुरुष को चारों ओर से घेरकर उसके बान्धवगण पूछा करते हैं- 'क्या तू मुझे जानता है ? क्या तू मुझे पहचानता है ?' जब तक उसकी वाणी मन में लीन नहीं होती तथा मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परदेवता में लीन नहीं होता तब तक वह पहचान लेता है ।1।

अथ यदास्य वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ॥ ६.१५.२॥

फिर जिस समय उसकी वाणी मन में लीन हो जाती है तथा मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परदेवता में लीन हो जाता है तब वह नहीं पहचानता ।2।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत् सत्यꣳ स आत्मा

तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति

तथा सोम्येति होवाच ॥ ६.१५.३॥

वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है । ऐसा कहे जाने पर श्वेतकेतु बोला- 'भगवन् ! आप मुझे फिर समझाइए' । तब आरुणि ने 'अच्छा सोम्य !' ऐसा कहा ।3।

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

॥ षोडश खण्ड ॥

पुरुषꣳ सोम्योत
हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै
तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं
कुरुते सोऽनृताभिसंधोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय
परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥ ६.१६.१॥

हे सोम्य ! राजकर्मचारी किसी पुरुष को हाथ बाँधकर लाते हैं और कहते हैं- 'इसने धन का अपहरण किया है, चोरी की है इसके लिए परशु तपाओ' । वह यदि उस चोरी का करने वाला होता है तो अपने को मिथ्यावादी प्रमाणित करता है । वह मिथ्याभिनिवेश वाला पुरुष अपने को मिथ्या से छुपाता हुआ तपे हुए परशु को ग्रहण करता है, किन्तु वह उससे दग्ध होता है और मारा जाता है ।1।

अथ यदि तस्याकर्ता भवति ततेव सत्यमात्मानं कुरुते
स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं
प्रतिगृह्णाति सन दह्यतेऽथ मुच्यते ॥ ६.१६.२॥

और यदि वह उस चोरी का करने वाला नहीं होता तो उसी से वह अपने को सत्य प्रमाणित करता है । वह सत्याभिसन्ध अपने को सत्य से आवृत कर उस तपे हुए परशु को पकड़ लेता है । वह उससे नहीं जलता और तत्काल छोड़ दिया जाता है ।2।

स यथा तत्र नादाह्येतैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥ ६.१६.३॥

वह जिस प्रकार उस परीक्षा के समय नहीं जलता, उसी प्रकार विद्वान का पुनरावर्तन नहीं होता । यह सब एतद्रूप ही है । वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है । तब वह श्वेतकेतु उसे जान गया- उसे जान गया ।3।

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

॥ सप्तमोऽध्यायः सप्तम अध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तꣳ

होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति

स होवाच ॥ ७.१.१॥

'हे भगवन् ! मुझे उपदेश कीजिये' ऐसा कहते हुए नारद जी सानत्कुमार जी के पास गए । उनसे सानत्कुमार जी ने कहा- 'तुम जो कुछ जानते हो उसे बतलाते हुए मेरे पास उपदेश लेने के लिए आओ, तब मैं तुम्हें उससे आगे बतलाऊँगा' तब नारद ने कहा- ।1।

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं

चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं

दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां

भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ

सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ ७.१.२॥

भगवन् ! मुझे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद याद है, इतिहास-पुराणरूप पाँचवाँ वेद, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या, और देवजनविद्या- नृत्य-संगीत आदि- हे भगवन् ! यह सब मैं जानता हूँ' ।2।

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतꣳ ह्येव मे

भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः

शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति

तꣳ होवाच यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ॥ ७.१.३॥

हे भगवन् ! मैं केवल मन्त्रवेत्ता ही हूँ, आत्मवेत्ता नहीं हूँ । मैंने आप जैसों से सुना है कि आत्मवेत्ता शोक को पार कर लेता है, और हे भगवन् ! मैं शोक करता हूँ, ऐसे मुझको हे भगवन् ! शोक से पार कर दीजिए । तब सानत्कुमार ने उनसे कहा- 'तुम यह जो कुछ जानते हो यह नाम ही है' ।3।

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ

इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो

निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या

क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या

नामैवैतन्नामोपास्स्वेति ॥ ७.१.४ ॥

ऋग्वेद नाम है, तथा यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्वण वेद, पाँचवाँ वेद इतिहास-पुराण, वेदों का वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, देवविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्यौतिष, गारुड़, संगीतादि कला और शिल्पविद्या-ये सब भी नाम ही हैं, तुम नाम की उपासना करो ।4।

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य

यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति

भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे

भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१.५॥

वह जो कि नाम की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसकी जहाँ तक नाम की गति होती है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि नाम की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन्! क्या नाम

से भी अधिक कुछ है ?' – 'नाम से भी अधिक है' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।5।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ

सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं

पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां

ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यां

दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च

देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च

तृणवनस्पतीञ्श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं

धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च

हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो

नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु

न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति

वाचमुपास्स्वेति ॥ ७.२.१॥

वाक् ही नाम से बढ़कर है, वाक् ही ऋग्वेद को विज्ञापित करती है तथा यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ आथर्वण वेद, पाँचवाँ वेद इतिहास-

पुराण, वेदों का वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, देवविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्यौतिष, गारुड़, संगीतशास्त्र, द्युलोक, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण-वनस्पति, श्वापद, कीट-पतंग,पिपीलिकापर्यन्त प्राणी, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, जो कुछ भी है उसे वाक् ही विज्ञापित करती है । यदि वाणी न होती तो न धर्म का और न अधर्म का ही ज्ञान होता, तथा न सत्य न असत्य, न साधु न असाधु, न मनोज्ञ और न अमनोज्ञ का ही ज्ञान हो सकता । वाणी ही इस सबका ज्ञान कराती है, अतः तुम वाक् की उपासना करो ।1।

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य

यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति

भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे

भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.२.२॥

वह जो वाणी की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसकी जहाँ तक वाणी की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि वाणी की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन् ! क्या वाणी से भी अधिक कुछ है ?' – 'वाणी से भी अधिक है' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥तृतीय खण्ड॥

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वे वा कोले

द्वौ वाक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च

मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति

मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते

पुत्रा‌ꣳश्च पशू‌ꣳश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च

लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको

मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ॥ ७.३.१ ॥

मन ही वाणी से उत्कृष्ट है । जिस प्रकार दो आँवले, दो बेर अथवा दो बहेड़े मुट्ठी में आ जाते हैं उसी प्रकार वाक् और नाम का मन में अन्तर्भाव हो जाता है । यह पुरुष जिस समय मन से विचार करता है कि 'मन्त्रों का पाठ करूँ' तभी पाठ करता है, जिस समय सोचता है 'काम करूँ' तभी काम करता है, जब विचारता है 'पुत्र और पशुओं की इच्छा करूँ' तभी उनकी इच्छा करता है और जब ऐसा संकल्प करता है कि 'इस लोक और परलोक की कामना करूँ' तभी उनकी कामना करता है । मन ही आत्मा है, मन ही लोक है और मन ही ब्रह्म है, मन की उपासना करो ।1।

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य

यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति

भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति

तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.३.२॥

वह जो मन की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसकी जहाँ तक मन की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि मन की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन् ! क्या मन से भी अधिक कुछ है ?' – 'मन से भी अधिक है ही' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

संकल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै संकल्पयतेऽथ

मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि

मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ ७.४.१॥

संकल्प ही मन से बढ़कर है । जिस समय मनुष्य संकल्प करता है तभी वह बोलने की इच्छा करता है और फिर वाणी को प्रेरित करता है । वह उसे नाम के प्रति प्रवृत्त करता है, नाम में सब मन्त्र एकरूप हो जाते हैं और मन्त्रों में कर्मों का अन्तर्भाव हो जाता है ।1।

तानि ह वा एतानि संकल्पैकायनानि संकल्पात्मकानि

संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी

समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तापश्च

तेजश्च तेषाꣳ सं क्लृप्त्यै वर्षꣳ संकल्पते

वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नꣳ संकल्पतेऽन्नस्य सं क्लृप्त्यै

प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानाꣳ सं क्लृप्त्यै मन्त्राः संकल्पन्ते

मन्त्राणाꣳ सं कॢप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणां

संकॢप्त्यै लोकः संकल्पते लोकस्य सं कॢप्त्यै सर्वꣳ

संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्स्वेति ॥ ७.४.२ ॥

वे ये मन आदि एकमात्र संकल्परूप लयस्थान वाले, संकल्पमय और संकल्प में ही प्रतिष्ठित हैं । द्युलोक और पृथ्वी ने मानो संकल्प किया है । वायु और आकाश ने संकल्प किया है, जल और तेज ने संकल्प किया है । उनके संकल्प के लिए वृष्टि समर्थ होती है, वृष्टि के संकल्प के लिए अन्न समर्थ होता है, अन्न के संकल्प के लिए प्राण समर्थ होते हैं, प्राण के संकल्प के मन्त्र प्राण समर्थ होते हैं, मन्त्रों के संकल्प के लिए कर्म समर्थ होते हैं, कर्मों के संकल्प के लिए लोक समर्थ होता है और लोकों के संकल्प के लिए सब समर्थ होते हैं । वह ऐसा यह संकल्प है, संकल्प की उपासना करो ।2।

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते संकॢप्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः

प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति

यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः

संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय इति

संकल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.४.३॥

वह जो संकल्प की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है वह रचे हुए ध्रुवलोकों को स्वयं ध्रुव होकर, प्रतिष्ठित लोकों को स्वयं प्रतिष्ठित होकर तथा व्यथा न पाने वाले लोकों को स्वयं व्यथा न पाता हुआ सब प्रकार प्राप्त करता है । उसकी जहाँ तक संकल्प की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि संकल्प की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन् ! क्या संकल्प से भी अधिक कुछ है ?' – 'संकल्प से भी अधिक है ही' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।3।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ पञ्चम खण्ड ॥

चित्तं वाव सं कल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ

संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति

फिर मनन करता है, तत्पश्चात् वाणी को

नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥ ७.५.१॥

चित्त ही संकल्प से उत्कृष्ट है । जिस समय पुरुष चेतनावान होता है, तभी वह संकल्प करता है

प्रेरित करता है, उसे नाम में प्रवृत्त करता है । नाम में मन्त्र एकरूप हो जाते हैं और मन्त्रों में कर्म ।1।

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते
प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति
नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं
विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान्भवति
तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳह्येवैषामेकायनं
चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति ॥ ७.५.२ ॥

वे ये संकल्पादि आदि एकमात्र चित्तरूप लयस्थान वाले, चित्तमय और चित्त में ही प्रतिष्ठित हैं । इसी से यद्यपि कोई मनुष्य बहुज्ञ भी हो तो भी यदि वह अचित्त होता है तो लोग कहने लगते हैं कि ‘यह तो कुछ भी नहीं है यदि यह कुछ जानता तो ऐसा अचित्त न होता’ । और यदि कोई अल्पज्ञ होने पर भी चित्तवान हो तो उसी से सब श्रवण करना चाहते हैं । अतः चित्त ही इनका एकमात्र आश्रय है, चित्त ही आत्मा है, चित्त ही प्रतिष्ठा है, चित्त की उपासना करो ।2।

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः
प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति
यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं
ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव
भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.५.३॥

वह जो चित्त की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है वह उपचित हुए ध्रुवलोकों को स्वयं ध्रुव होकर, प्रतिष्ठित लोकों को स्वयं प्रतिष्ठित होकर तथा व्यथा न पाने वाले लोकों को स्वयं व्यथा न पाता हुआ सब प्रकार प्राप्त करता है । उसकी जहाँ तक चित्त की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि चित्त की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन्! क्या चित्त से भी अधिक कुछ है ?' – 'चित्त से भी अधिक है ही' – 'तो भगवन्! मुझे वही बतलावें' ।3।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

॥ षष्ठ खण्ड ॥

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी
ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो
ध्यायन्तीव पर्वता देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां
महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादाꣳशा इवैव ते भवन्त्यथ
येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो
ध्यानापादाꣳशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति ॥ ७.६.१॥

ध्यान ही चित्त से बढ़कर है । पृथ्वी मानो ध्यान करती है, अन्तरिक्ष मानो ध्यान करता है, द्युलोक मानो ध्यान करता है, जल मानो ध्यान करते हैं, पर्वत मानो ध्यान करते हैं तथा देवता और मनुष्य भी मानो ध्यान करते हैं । अतः जो लोग मनुष्यों में यहाँ महत्त्व को प्राप्त करते हैं वे मानो ध्यान के लाभ का ही अंश पाते हैं, किन्तु जो क्षुद्र होते हैं वे कलहप्रिय, चुगलखोर और दूसरों के मुँह पर ही उनकी निन्दा करने वाले होते हैं । जो सामर्थ्यवान हैं वे भी ध्यान के लाभ का ही अंश प्राप्त करने वाले हैं । ध्यान की उपासना करो ।1।

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य
यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति
भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति
तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.६.२॥

वह जो ध्यान की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसकी जहाँ तक ध्यान की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि ध्यान की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। – 'भगवन्! क्या ध्यान से भी अधिक कुछ है ?' – 'ध्यान से भी अधिक है ही' – 'तो भगवन्! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

॥ सप्तम खण्ड ॥

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयः विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति
यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं
पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं
वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां
क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳसर्पदेवजनविद्यां दिवं च
पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च
मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च
तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं
धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च
हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं
च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥ ७.७.१ ॥

विज्ञान ही ध्यान से श्रेष्ठ है । विज्ञान से ही पुरुष ऋग्वेद समझता है, विज्ञान से ही वह यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ आथर्वण वेद, पाँचवें वेद

इतिहास-पुराण, वेदों का वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, देवविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्यौतिष, गारुड़, संगीतशास्त्र, द्युलोक, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण-वनस्पति, श्वापद, कीट-पतंग,पिपीलिकापर्यन्त प्राणी, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, अन्न, रस, इहलोक तथा परलोक को जानता है । विज्ञान की उपासना करो ।1।

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स

लोकाञ्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य

यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो

विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे

भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.७.२॥

वह जो विज्ञान की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसे विज्ञानवान और ज्ञानवान लोकों की प्राप्ति होती है । उसकी जहाँ तक विज्ञान की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि विज्ञान की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन् ! क्या

विज्ञान से भी अधिक कुछ है ?' – 'विज्ञान से भी अधिक है ही' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

॥ अष्टम खण्ड ॥

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको
बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता
भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता
भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति
बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी
तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन
देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः
श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति
बलमुपास्स्वेति ॥ ७.८.१॥

बल ही विज्ञान की अपेक्षा उत्कृष्ट है । सौ विज्ञानवानों को भी एक बलवान हिला देता है । जिस समय यह पुरुष बलवान होता है तभी उठनेवाला भी होता है, उठकर ही परिचर्या करनेवाला होता है तथा परिचर्या करने वाला होने पर ही उपसदन करने वाला होता है और उपसदन करने वाला होने पर ही दर्शन करने वाला होता है, श्रवण

करने वाला होता है, मनन करने वाला होता है, बोधवान होता है, कर्ता होता है एवं विज्ञता होता है। बल से ही पृत्वी स्थित है, बल से ही अन्तरिक्ष, बल से ही द्युलोक, बल से ही पर्वत, बल से ही देवता और मनुष्य, बल से ही पशु, पक्षी, तृण-वनस्पति, श्वापद, कीट-पतंग,पिपीलिकापर्यन्त समस्त प्राणी स्थित हैं तथा बल से ही लोक स्थित है। बल की उपासना करो ।1।

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य

यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो

बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे

भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.८.२॥

वह जो बल की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसकी जहाँ तक बल की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि बल की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। – 'भगवन्! क्या बल से भी अधिक कुछ है?' – 'बल से भी अधिक है ही' – 'तो भगवन्! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

॥ नवम खण्ड ॥

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दश

रात्रीर्नाश्नीयाद्यद्यु ह

जीवेदथवाद्रष्टाश्रोतामन्ताबोद्धाकर्ताविज्ञाता

भवत्यथान्नस्यायै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता

भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता

भवत्यन्नमुपास्स्वेति ॥ ७.९.१॥

अन्न ही बल से उत्कृष्ट है । इसी से यदि दस दिन भोजन न करे और जीवित भी रह जाये तो भी वह अद्रष्टा, अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्ता और अविज्ञाता हो ही जाता है । फिर अन्न की प्राप्ति होने पर ही द्रष्टा होता है, श्रोता होता है, मनन करने वाला होता है, बोद्धा होता है, कर्ता होता है और विज्ञाता होता है । अन्न की उपासना करो ।1।

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स

लोकान्पानवतोऽभिसिध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य

यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति

भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे

भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.९.२॥

वह जो अन्न की ‘यह ब्रह्म है’ ऐसी उपासना करता है उसे अन्नवान और पानवान लोकों की प्राप्ति होती है । उसकी जहाँ तक अन्न की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि अन्न की ‘यह ब्रह्म है’ ऐसी उपासना करता है । – ‘भगवन् ! क्या अन्न से भी अधिक कुछ है ?’ – ‘अन्न से भी अधिक है ही’ – ‘तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें’ ।2।

॥ इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशम खण्ड ॥

आपो वावान्नाद्भूयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति
व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा
सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु
भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं
यद्द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्यायत्पशवश्च वयाꣳसि च
तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप
एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति ॥ ७.१०.१॥

जल ही अन्न की अपेक्षा श्रेष्ठ है । इसी से जब सुवृष्टि नहीं होती तो प्राण दुःखी हो जाते हैं कि अन्न थोड़ा होगा । और जब सुवृष्टि होती है तो यह सोचकर कि खूब अन्न होगा प्राण प्रसन्न हो जाते हैं । यह जो पृथ्वी है मूर्तिमान जल ही है तथा जो अन्तरिक्ष, द्युलोक, पर्वत, देव्-मनुष्य, जो पशु, पक्षी, तृण-वनस्पति, श्वापद, कीट-पतंग,पिपीलिकापर्यन्त समस्त प्राणी हैं वे भी मूर्तिमान जल ही हैं । जल की उपासना करो ।1।

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामाꣳस्तृप्तिमान्भवति
यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो
ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव
भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१०.२॥

वह जो जल की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है, सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है और तृप्तिमान होता है । उसकी जहाँ तक जल की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि जल की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन् ! क्या जल से भी श्रेष्ठ कुछ है ?' – 'जल से भी श्रेष्ठ है ही' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति दशमः खण्डः ॥

॥ एकादश खण्ड ॥

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याकाशमभितपति
तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव
तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च
तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते
स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः
सृजते तेज उपास्स्वेति ॥ ७.११.१॥

तेज ही जल की अपेक्षा उत्कृष्टतर है । वह यह तेज जिस समय वायु को निश्चल कर आकाश को सब ओर से तृप्त करता है उस समय लोग कहते हैं- 'गर्मी हो रही है, बड़ा ताप है, वर्षा होगी' । इस प्रकार तेज ही पहले अपने को उद्भूत हुआ दिखलाकर फिर जल की उत्पत्ति करता है । वह यह तेज ही वर्षा का हेतु है । जब उर्ध्वगामी और तिर्यग्गामी विद्युत के सहित गड़गड़ाहट के शब्द फैल जाते हैं तब उससे प्रभावित होकर लोग कहते हैं- 'बिजली चमकती है, बादल गर्जता है, वर्षा होगी' । इस प्रकार तेज ही पहले अपने को प्रदर्शित कर फिर जल को उत्पन्न करता है । अतः तेज की उपासना करो ।1।

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो

लोकान्भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.११.२॥

वह जो तेज की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है वह तेजस्वी होकर तेजःसम्पन्न, प्रकाशमान और तमोहीन लोकों को प्राप्त करता है । उसकी जहाँ तक तेज की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि तेज की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन् ! क्या तेज से भी अधिक कुछ है ?' – 'तेज से भी अधिक है ही' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

॥ द्वादश खण्ड ॥

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ

विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन
शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत
आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति
॥ ७.१२.१॥

आकाश ही तेज से बढ़कर है । आकाश में ही सूर्य, चन्द्र ये दोनों तथा विद्युत, नक्षत्र और अग्नि स्थित है । आकाश के द्वारा ही एक-दूसरे को पुकारते हैं, आकाश से ही सुनते हैं, आकाश से ही प्रतिश्रवण करते हैं, आकाश में ही रमण करते हैं, आकाश में ही रमण नहीं करते, आकाश में ही उत्पन्न होते हैं, आकाश की ओर ही बढ़ते हैं । आकाश की उपासना करो ।1।

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स
लोकान्प्रकाशवतोऽसंबाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति
यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति
य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इति
आकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति
॥ ७.१२.२॥

वह जो कि आकाश की ‘यह ब्रह्म है’ ऐसी उपासना करता है वह आकाशवान, प्रकाशवान, पीड़ारहित और विस्तार वाले लोकों को प्राप्त करता है । उसकी जहाँ तक आकाश की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि आकाश की ‘यह ब्रह्म है’ ऐसी उपासना करता है । – ‘भगवन् ! क्या आकाश से भी अधिक कुछ है ?’ – ‘आकाश से भी अधिक है ही’ – ‘तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें’ ।2।

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

॥ त्रयोदश खण्ड ॥

स्मरो वावाकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न
स्मरन्तो नैव ते कंचन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन्यदा
वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण
वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ॥ ७.१३.१॥

स्मर ही आकाश से बढ़कर है । इसी से यद्यपि बहुत-से लोग बैठे हों तो भी स्मरण न करने पर वे न कुछ सुन सकते हैं, न मनन कर सकते हैं और न जान ही सकते हैं । जिस समय वे स्मरण करते हैं उसी समय सुन सकते हैं, उसी समय मनन कर सकते हैं और उसी समय जान सकते हैं । स्मरण करने से ही पुरुष पुत्रों को पहचानता है और स्मरण से ही पशुओं को । तुम स्मर की उपासना करो ।1।

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य

यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः

स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे

भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१३.२॥

वह जो स्मर की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसकी जहाँ तक स्मर की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि स्मर की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन् ! क्या स्मर से भी श्रेष्ठ कुछ है ?' – 'स्मर से भी श्रेष्ठ है ही' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

॥ चतुर्दश खण्ड ॥

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते
कर्माणि कुरुते पुत्राꣳश्च पशूꣳश्चेच्छत इमं च
लोकममुं चेच्छत आशामुपास्स्वेति ॥ ७.१४.१॥

आशा ही स्मरण की अपेक्षा उत्कृष्ट है । आशा से दीप्त हुआ स्मरण ही मन्त्रों का पाठ करता है, कर्म करता है, पुत्र और पशुओं की इच्छा करता है, तथा लोक और परलोक की कामना करता है । आशा की उपासना करो ।1।

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयास्य सर्वे कामाः
समृध्यन्त्यमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया
गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां
ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव
भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ ७.१४.२॥

वह जो आशा की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसकी सब कामनाएँ आशा से समृद्ध होती हैं । उसकी प्रार्थनाएँ सफल होती हैं । उसकी जहाँ तक आशा की गति है वहाँ तक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि आशा की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है । – 'भगवन् ! क्या आशा से भी अधिक कुछ है ?' – 'आशा से भी अधिक है ही' – 'तो भगवन् ! मुझे वही बतलावें' ।2।

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

॥ पञ्चदश खण्ड ॥

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता

एवमस्मिन्प्राणे सर्वꣳसमर्पितं प्राणः प्राणेन याति

प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो

माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः

प्राणो ब्राह्मणः ॥ ७.१५.१॥

प्राण ही आशा से बढ़कर है । जिस प्रकार रथचक्र की नाभि में अरे समर्पित रहते हैं उसी प्रकार इस प्राण में सारा जगत समर्पित है ।

प्राण प्राण के द्वारा गमन करता है, प्राण प्राण को देता है और प्राण के लिए ही देता है । प्राण ही पिता है, प्राण ही माता है, प्राण ही भाई है, प्राण बहिन है, प्राण आचार्य है और प्राण ही ब्राह्मण है ।1।

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाचार्यं

वा ब्राह्मणं वा किंचिद्भृशमिव प्रत्याह

धिक्त्वास्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै

त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा

वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥ ७.१५.२॥

यदि कोई परुष अपने पिता, माता, भ्राता, भगिनी, आचार्य अथवा ब्राह्मण के लिए कोई अनुचित बात कहता है, तो सब उससे कहते हैं- 'तुझे धिक्कार है, तू निश्चय ही पिता का हनन करने वाला है, तू माता का हनन करने वाला है, तू भी का हनन करने वाला है, तू बहिन का हनन करने वाला है, तू आचार्य का हनन करने वाला है, तू ब्राह्मण का हनन करने वाला है' ।2।

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं

व्यतिषंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहासीति न मातृहासीति

न भ्रातृहासीति न स्वसृहासीति नाचार्यहासीति

न ब्राह्मणहासीति ॥ ७.१५.३॥

किन्तु जिनके प्राण उत्क्रमण कर गए हैं उन पिता आदि को यदि वह शूल से एकत्रित और छिन्न-भिन्न करके जला दे तो भी उससे 'तू पितृहा है, मातृहा है, भाई की हत्या करने वाला है, बहिन की हत्या करने वाला है, आचार्यघाती है अथवा ब्राह्मण घाती है' ऐसा कुछ नहीं कहते ।3।

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं

मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं

चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत

॥ ७.१५.४॥

प्राण ही ये सब हैं । वह जो इस प्रकार देखने वाला, इस प्रकार चिन्तन करने वाला और इस प्रकार जानने वाला है अतिवादी होता है । यदि उससे कोई कहे कि 'तू अतिवादी है' तो उसे यही कहना चाहिए कि 'हाँ अतिवादी हूँ', उसे छिपाना नहीं चाहिए ।4।

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

॥ षोडश खण्ड ॥

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः
सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं
भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.१६.१॥

'जो सत्य के कारण अतिवदन करता है, वही निश्चय अतिवदन करता है' – 'भगवन् ! मैं तो परमार्थ सत्य विज्ञान के कारण ही अतिवदन करता हूँ' – 'सत्य की ही तो विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए' – 'भगवन् ! मैं विशेष रूप से सत्य की जिज्ञासा करता हूँ' ।1।

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

॥ सप्तदश खण्ड ॥

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति

विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति

विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.१७.१॥

'जिस समय पुरुष सत्य को विशेषरूप से जानता है तभी वह सत्य बोलता है । बिना जाने सत्य नहीं बोलता, अपितु विशेषरूप से जानने वाला ही सत्य का कथन करता है । अतः विज्ञान की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए' – 'भगवन् ! मैं विशेष रूप से विज्ञान की जिज्ञासा करता हूँ' ।1।

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

॥ अष्टादश खण्ड ॥

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव

विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो

विजिज्ञास इति ॥ ७.१८.१॥

‘जिस समय मनुष्य मनन करता है तभी वह विशेषरूप से जानता है । बिना मनन किये कोई नहीं जानता, अपितु मनन करने पर ही जानता है । अतः मति की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए’ – ‘भगवन् ! मैं विशेष रूप से मति की जिज्ञासा करता हूँ’ ।1।

॥ इति अष्टादशः खण्डः ॥

॥ एकोनविंश खण्ड ॥

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते

श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति

श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.१९.१॥

'जिस समय मनुष्य श्रद्धा करता है तभी वह मनन करता है । बिना श्रद्धा किये कोई मनन नहीं करता, अपितु श्रद्धा करने वाला ही मनन करता है । अतः श्रद्धा की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए' – 'भगवन् ! मैं विशेष रूप से श्रद्धा की जिज्ञासा करता हूँ' ।1।

॥ इति एकोनविंशतितमः खण्डः ॥

॥ विंश खण्ड ॥

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति
नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति
निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो
विजिज्ञास इति ॥ ७.२०.१॥

'जिस समय मनुष्य की निष्ठा होती है तभी वह श्रद्धा करता है । बिना निष्ठा के कोई श्रद्धा नहीं करता, अपितु निष्ठा करने वाला ही श्रद्धा करता है । अतः निष्ठा की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए' – 'भगवन् ! मैं विशेष रूप से निष्ठा की जिज्ञासा करता हूँ' ।1।

॥ इति विंशतितमः खण्डः ॥

॥ एकविंश खण्ड ॥

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति
कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति
कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.२१.१॥

'जिस समय मनुष्य करता है उस समय वह निष्ठा भी करने लगता है । बिना किये किसी की निष्ठा नहीं होती, पुरुष करने पर ही निष्ठावान होता है । अतः कृति की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए' – 'भगवन् ! मैं विशेष रूप से करती की जिज्ञासा करता हूँ' ।1।

॥ इति एकविंशः खण्डः ॥

॥ द्वाविंश खण्ड ॥

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥ ७.२२.१॥

'जब मनुष्य को सुख प्राप्त होता है तभी वह करता है । बिना सुख मिले कोई नहीं करता, अपितु सुख पाकर ही करता है । अतः सुख की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए' – 'भगवन् ! मैं विशेष रूप से सुख की जिज्ञासा करता हूँ' ।1।

॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

॥ त्रयोविंश खण्ड ॥

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं

भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो

विजिज्ञास इति ॥ ७.२३.१॥

'निश्चय जो भूमा है वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है । सुख भूमा ही है । अतः भूमा की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए' – 'भगवन् ! मैं विशेष रूप से भूमा की जिज्ञासा करता हूँ' ।1।

॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

॥ चतुर्विंश खण्ड ॥

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स
भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति
तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्य्ँ स
भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा
न महिम्नीति ॥ ७.२४.१॥

'जहाँ कुछ और नहीं देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता वह भूमा है । किन्तु जहाँ कुछ और देखता है, कुछ और सुनता है एवं कुछ और जानता है वह अल्प है । जो भूमा है वही अमृत है और जो अल्प है वही मर्त्य है' – 'भगवन् ! वह भूमा किसमें प्रतिष्ठित है ?' – 'अपनी महिमा में अथवा अपनी महिमा में भी नहीं है' ।1।

गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं

क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति

होवाचान्योह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ॥ ७.२४.२॥

‘इस लोक में गौ, अश्व आदि को महिमा कहते हैं तथा हाथी, सुवर्ण, दास, भार्या, क्षेत्र और घर- इनका नाम भी महिमा है । किन्तु मेरा ऐसा कथन नहीं है, क्योंकि अन्य पदार्थ अन्य में प्रतिष्ठित होता है । मैं तो यह कहता हूँ’- ऐसा सानत्कुमारजी ने कहा ।2।

॥ इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

॥ पञ्चविंश खण्ड ॥

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स

दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश

एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं

दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳ सर्वमिति ॥ ७.२५.१॥

वही नीचे है, वही ऊपर है, वही पीछे है, वही आगे है, वही दक्षिण है, वही उत्तर है और वही यह सब है। अब उसी में अहँकारादेश किया जाता है- 'मैं ही नीचे हूँ, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही पीछे हूँ, मैं ही आगे हूँ मैं ही दक्षिण हूँ, मैं ही उत्तर हूँ और मैं ही यह सब हूँ।1।

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा

पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत

आत्मैवेदꣳ सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं

विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स

स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति

अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति

तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ ७.२५.२॥

अब आत्मारुप से ही भूमा का आदेश किया जाता है । आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दक्षिण है, आत्मा ही उत्तर है और आत्मा ही यह सब है । वह यह इस प्रकार देखने वाला, इस प्रकार मनन करने वाला तथा विशेषरूप से इस प्रकार जानने वाला आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन और आत्मानन्द होता है, वह स्वराट् है, सम्पूर्ण लोकों में उसकी यथेच्छ गति होती है । किन्तु जो इससे विपरीत जानते हैं वे अन्यराट् और क्षयशील लोकों को प्राप्त होते हैं । उनकी सम्पूर्ण लोकों में स्वेच्छागति नहीं होती ।2।

॥ इति पञ्चविंशः खण्डः ॥

॥ षडविंश खण्ड ॥

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत

आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश

आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत

आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो

विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः

संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा

आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳसर्वमिति ॥ ७.२६.१॥

उस इस प्रकार देखने वाले, इस प्रकार मनन करने वाले और इस प्रकार जानने वाले इस विद्वान के लिए आत्मा से प्राण, आत्मा से आशा, आत्मा से स्मृति, आत्मा से आकाश, आत्मा से तेज, आत्मा से जल, आत्मा से आविर्भाव, आत्मा से तिरोभाव, आत्मा से अन्न, आत्मा से बल, आत्मा से विज्ञान, आत्मा से ध्यान, आत्मा से चित्त, आत्मा से संकल्प, आत्मा से मन, आत्मा से वाक्, आत्मा से नाम, आत्मा से मन्त्र, आत्मा से कर्म और आत्मा से ही यह सब हो जाता है ।1।

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताꣳ

सर्वꣳ ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति

स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा

सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः

शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च

विꣳशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः

स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै

मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति

भगवान्सनत्कुमारस्तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते

तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते ॥ ७.२६.२॥

इस विषय में यह मन्त्र है- 'विद्वान न तो मृत्यु को देखता है, न रोग को न दुःखत्व को ही । वह विद्वान सबको आत्मरूप ही देखता है, अतः सबको प्राप्त हो जाता है । वह एक होता है, फिर वही तीन, पाँच, सात और नौ रूप हो जाता है । फिर वही ग्यारह कहा गया है तथा वही सौ, दस, एक सहस्र और बीस भी होता है । आहारशुद्धि होने पर अंतःकरण की शुद्धि होती है, अंतःकरण की शुद्धि होने पर निश्चल स्मृति होती है, तथा स्मृति की प्राप्ति होने पर सम्पूर्ण ग्रन्थियों की निवृत्ति हो जाती है । इस प्रकार उन नारदजी को, जिनकी वासनाएँ क्षीण हो गयी थीं, भगवान् सानत्कुमार ने अज्ञानान्धकार का पार दिखलाया । उनको 'स्कन्द' ऐसा कहते हैं, 'स्कन्द' ऐसा कहते हैं ।2।

॥ इति षड्विंशः खण्डः ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ अष्टमोऽध्यायः आठवाँ अध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

॥ अष्टमोऽध्यायः ॥

अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म

दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं

तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ ८.१.१॥

अब, इस ब्रह्मपुर के भीतर जो यह सूक्ष्म कमलाकार स्थान है इसमें जो सूक्ष्म आकाश है उसके भीतर जो वस्तु है उसका अन्वेषण करना चाहिए और उसी की जिज्ञासा करनी चाहिए ।1।

तं चेद्ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म

दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं

यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात् ॥ ८.१.२॥

उससे यदि पूछे कि इस ब्रह्मपुर में जो सूक्ष्म कमलाकार गृह है उसमें जो अन्तराकाश है उसके भीतर क्या वस्तु है जिसका अन्वेषण करना चाहिए ? – तो वह यों कहें ।2।

यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय अकाश

उभे अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते

उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ

विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं

तदस्मिन्समाहितमिति ॥ ८.१.३॥

जितना यह आकाश है उतना ही हृदयान्तर्गत आकाश है । द्युलोक और पृथ्वी- ये दोनों लोक सम्यक् प्रकार से इसके भीतर ही स्थित हैं । इसी प्रकार अग्नि और वायु- ये दोनों, सूर्य और चन्द्रमा- ये दोनों तथा विद्युत और नक्षत्र एवं इस आत्मा का जो कुछ इस लोक में है और जो नहीं है वह सब सम्यक् प्रकार से इसी में स्थित है ।3।

तं चेद्ब्रूयुरस्मिꣳश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वꣳ समाहितꣳ

सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरा वाप्नोति

प्रध्वꣳसते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति ॥ ८.१.४॥

यदि उससे पूछे कि यदि इस ब्रह्मपुर में सब समाहित है तथा सम्पूर्ण भूत और समस्त कामनाएँ भी सम्यक् प्रकार से स्थित हैं तो जिस समय वह वृद्धावस्था को प्राप्त होता है अथवा नष्ट हो जाता है उस समय क्या शेष रह जाता है ?।4।

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत

एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिताः एष

आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको

विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो यथा ह्येवेह

प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनम् यं यमन्तमभिकामा

भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति

॥ ८.१.५॥

उसे कहना कि इस देह की जरावस्था से यह जीर्ण नहीं होता। इसके वध से उसका नाश नहीं होता। यह ब्रह्मपुर सत्य है, इसमें समस्त

कामनाएँ सम्यक् प्रकार से स्थित हैं, यह आत्मा है, धर्माधर्म से शून्य है तथा जराहीन, मृत्युहीन, शोकरहित, भोजनेच्छारहित, पिपासाशून्य, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, जिस प्रकार इस लोक में प्रजा राजा की आज्ञा का अनुवर्तन करती है तो वह जिस-जिस सन्निहित वस्तु की कामना करती है तथा जिस-जिस देश या भूभाग की इच्छा करती है उसी-उसी के आश्रित जीवन धारण करती है ।5।

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो

लोकः क्षीयते तद्य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येताꣳश्च

सत्यान्कामाꣳस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो

भवत्यथ य इहात्मानमनिवुद्य व्रजन्त्येतꣳश्च

सत्यान्कामाꣳस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति

॥ ८.१.६ ॥

जिस प्रकार यहाँ कर्म से प्राप्त किया हुआ लोक क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार परलोक में पुण्योपार्जित लोक क्षीण हो जाता है । जो लोग इस लोक में आत्मा को और इस सत्य कामनाओं को जाने बिना ही परलोकगामी होते हैं उनकी सम्पूर्ण लोकों में यथेच्छ गति नहीं

होती और जो इस लोक में आत्मा को तथा सत्य कामनाओं को जानकर जाते हैं उनकी समस्त लोकों में यथेच्छ गति होती है ।6।

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

॥ द्वितीय खण्ड ॥

स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः

समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८.२.१॥

वह यदि पितृलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही पितृगण वहाँ उपस्थित होते हैं, उस पितृलोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।1।

अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य मातरः

समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८.२.२॥

वह यदि मातृलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही माताएँ वहाँ उपस्थित हो जाती हैं, उस मातृलोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।2।

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य भ्रातरः

समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८.२.३॥॥

और वह यदि भ्रातृलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही भ्रातृगण वहाँ उपस्थित होते हैं, उस भ्रातृलोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।3।

अथ यदि स्वसृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्वसारः

समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८.२.४॥

और वह यदि भगिनीलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही बहनें वहाँ उपस्थित हो जाती हैं, उस भागिनीलोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।4।

अथ यदि सखिलोककामो भवति संकल्पादेवास्य सखायः

समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८.२.५॥

और वह यदि सखाओं के लोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही सखालोग वहाँ उपस्थित होते हैं, उस सखाओं के लोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।5।

अथ यदि गन्धमाल्यलोककामो भवति संकल्पादेवास्य

गन्धमाल्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गन्धमाल्यलोकेन सम्पन्नो

महीयते ॥ ८.२.६॥

और वह यदि गन्धमाल्यलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही गन्धमाल्यादि वहाँ उपस्थित हो जाते हैं, उस गन्धमाल्यलोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।6।

अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति संकल्पादेवास्यान्नपाने

समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८.२.७॥

और वह यदि अन्नपान सम्बन्धी लोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही अन्नपान वहाँ उपस्थित हो जाते हैं अन्नपानलोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।7।

, उस

अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति संकल्पादेवास्य

गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन सम्पन्नो

महीयते ॥ ८.२.८॥

और वह यदि गीतवाद्य सम्बन्धी लोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही गीत-वाद्य वहाँ उपस्थित होते हैं उस गीतवाद्यलोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।8।

अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्त्रियः

समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८.२.९॥

और वह यदि स्त्रीलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही स्त्रियाँ वहाँ उपस्थित हो जाती हैं, उस स्त्रीलोक से सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।9।

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य

संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन सम्पन्नो महीयते ॥ ८.२.१०॥

वह जिस-जिस प्रदेश की कामना करने वाला होता है और जिस-जिस भोग की इच्छा करता है वह सब उसके संकल्प से ही उसको प्राप्त हो जाता है, उससे सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है ।10।

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

॥ तृतीय खण्ड ॥

त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषाꣳ सत्यानाꣳ

सतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह

दर्शनाय लभते ॥ ८.३.१॥

वे ये सत्यकाम अनृताच्छादनयुक्त हैं । सत्य होने पर भी अनृत उनका अपिधान है, क्योंकि इस प्राणी का जो-जो सम्बन्धी यहाँ से मरकर जाता है वह-वह उसे फिर देखने को नहीं मिलता ।1।

अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न

लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः

कामा अनृतापिधानास्तद्यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा

उपर्युपरि सञ्चरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा

अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि

प्रत्यूढाः ॥ ८.३.२॥

तथा उस लोक में अपने जिन जीवित अथवा जिन मृतक को और जिन पदार्थों को यह इच्छा करते हुए भी प्राप्त नहीं करता उन सबको यह इस ब्रह्मपुर में जाकर प्राप्त कर लेता है, क्योंकि यहाँ इसके ये सत्यकाम अनृत से ढके हुए रहते हैं । इस विषय में यह दृष्टांत है- 'जिस प्रकार पृथ्वी में गड़े हुए स्वर्ण के खजाने को उस स्थान से अनभिज्ञ पुरुष ऊपर-ऊपर विचरते हुए भी नहीं जानते । उसी प्रकार यह सारी प्रजा नित्यप्रति ब्रह्मलोक को जाती हुई उसे नहीं पाती क्योंकि यह अनृत के द्वारा हर ली गयी है ।2।

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तः हृद्ययमिति

तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ८.३.३॥

वह यह आत्मा हृदय में है 'हृदि अयम्' यही इसका निरुक्त है। इसी से यह 'हृदय' है। इस प्रकार जानने वाला पुरुष प्रतिदिन स्वर्गलोक को जाता है।3।

अथ य एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं

ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति

होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य

ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ॥ ८.३.४॥

यह जो सम्प्रसाद है वह इस शरीर से उत्थान कर परमज्योति को प्राप्त हो अपने स्वरूप से युक्त हो जाता है। यह आत्मा है, यही अमृत एवं अभय है और यही ब्रह्म है- ऐसा आचार्य ने कहा। उस इस ब्रह्म का 'सत्य' यह नाम है।4।

तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति

तद्यत्सत्तदमृतमथ यत्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोभे

यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा

एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ८.३.५॥

वे ये 'स', 'त्' और 'यम्' तीन अक्षर हैं । उनमें जो 'सकार' है वह अमृत है, जो 'तकार' है वह मर्त्य है और जो 'यम्' है उससे वह दोनों का नियमन करता है, क्योंकि उससे वह उन दोनों का नियमन करता है, इसलिए 'यम्' इस प्रकार जानने वाला प्रतिदिन ही स्वर्गलोक को जाता है ।5।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

॥ चतुर्थ खण्ड ॥

अथ य आत्मा स सेतुर्धृतिरेषां लोकानामसंभेदाय
नैतꣳ सेतुमहोरात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न
सुकृतं न दुष्कृतꣳ सर्वे पाप्मानोऽतो
निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः ॥ ८.४.१॥

जो आत्मा है वह इन लोकों के असम्भेद के लिए इन्हें विशेषरूप से धारण करने वाला सेतु है । इस सेतु का दिन-रात अतिक्रमण नहीं करते । इसे न जरा, न मृत्यु, न शोक और न सुकृत या दुष्कृत ही प्राप्त हो सकते हैं । सम्पूर्ण पाप इससे निवृत्त हो जाते हैं, क्योंकि यह ब्रह्मलोक पापशून्य है ।1।

तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वान्धः सन्ननन्धो भवति
विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति
तस्माद्वा एतꣳ सेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पद्यते
सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः ॥ ८.४.२॥

इसलिए इस सेतु को तरकर पुरुष अन्धा होकर भी अन्धा नहीं होता विद्ध होने पर भी विद्ध नहीं होता है, उपतापी होने पर भी अनुपतापी नहीं होता है, इसी से इस सेतु को तरकर अन्धकाररूप रात्रि भी दिन हो जाती है, क्योंकि यह ब्रह्मलोक सर्वदा प्रकाशस्वरूप है ।2।

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति

तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो

भवति ॥ ८.४.३॥

वहाँ ऐसा होने के कारण जो इस ब्रह्मलोक को ब्रह्मचर्य के द्वारा जानते हैं उन्हीं को यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है तथा उनकी सम्पूर्ण लोकों में यथेच्छ गति हो जाती है ।3।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

॥ पञ्चम खण्ड ॥

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण

ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते

ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वात्मानमनुविन्दते

॥ ८.५.१॥

अब, जिसे 'यज्ञ' कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि जो ज्ञात है वह ब्रह्मचर्य के द्वारा ही उसको प्राप्त हो जाता है । और जिसे 'इष्ट' ऐसा कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य के द्वारा पूजन करके ही पुरुष आत्मा को प्राप्त होता है ।1।

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण

ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते

ब्रह्मचर्यमेव तब्ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मानमनुविद्य मनुते '॥ ८.५.२॥

तथा जिसे 'सत्त्रायण' ऐसा कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य के द्वारा ही सत्-आत्मा से अपना त्राण प्राप्त करता है । इसके

सिवा जिसे 'मौन' ऐसा कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्य के द्वारा ही आत्मा को जानकर पुरुष मनन करता है ।2।

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष
ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ
यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदरश्च ह वै
ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं
मदीयꣳ सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता
पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳ हिरण्मयम् ॥ ८.५.३॥

तथा जिसे 'अनाशकायन' कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि जिसे ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त होता है वह यह आत्मा नष्ट नहीं होता । और जिसे 'अरन्यायन' ऐसा कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि इस ब्रह्मलोक में 'अर' और 'ण्य' ये दो समुद्र हैं, यहाँ से तीसरे द्युलोक में एरंमदीय सरोवर है, सोमसवन नाम का अश्वत्थ है, वहाँ ब्रह्मा की अपराजिता पुरी है और प्रभु का विशेषरूप से निर्माण किया हुआ सुवर्णमय मण्डप है ।3।

तद्य एवैतवरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके

ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳ

सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ८.५.४॥

उस ब्रह्मलोक में जो लोग ब्रह्मचर्य के द्वारा इन 'अर' और 'ण्य' दोनों समुद्रों को प्राप्त करते हैं, उन्हीं को इस ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । उनकी सम्पूर्ण लोकों में यथेच्छ गति हो जाती है ।4।

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

॥ षष्ठ खण्ड ॥

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति

शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः

पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः

॥ ८.६.१॥

अब, ये जो हृदय की नाड़ियाँ हैं वे पिंगलवर्ण सूक्ष्म रस की हैं । वे शुक्ल, नील, पीत, और लोहित रस की हैं, क्योंकि यह आदित्य पिंगलवर्ण है, यह शुक्ल है, यह नील है, यह पीत है और यह लोहित वर्ण है ।1।

तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं चामुं

चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं

चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता

आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः

॥ ८.६.२ ॥

इस विषय में यह दृष्टांत है कि जिस प्रकार कोई विस्तीर्ण महापथ इस और उस दोनों गाँवों को जाता है उसी प्रकार ये सूर्य की किरणें इस पुरुष में और उस आदित्यमण्डल में दोनों लोकों में प्रविष्ट हैं । वे निरन्तर इस आदित्य से ही निकली हैं और इन नाड़ियों में व्याप्त हैं तथा जो इन नाड़ियों से निकलती हैं वे इस आदित्य में व्याप्त हैं ।2।

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्त्ः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु

तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति

तेजसा हि तदा सम्पन्नो भवति ॥ ८.६.३ ॥

ऐसी अवस्था में जिस समय वह सोया हुआ- भली प्रकार लीन हुआ पुरुष सम्यक् प्रकार से प्रसन्न होकर स्वप्न नहीं देखता उस समय यह इन नाड़ियों में चला जाता है, तब इसे कोई पाप स्पर्श नहीं करता और यह तेज से व्याप्त हो जाता है ।3।

अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना

आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स

यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तो भवति तावज्जानाति

॥ ८.६.४ ॥

अब, जिस समय वह जीव शरीर की दुर्बलता को प्राप्त होता है उस समय उसके चारों ओर बैठे हुए लोग कहते हैं- 'क्या तुम मुझे जानते हो ? क्या तुम मुझे जानते हो ?' जब तक वह इस शरीर से उत्क्रमण नहीं करता तब तक उन्हें जानता है ।4।

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव

रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वा होद्वा मीयते

स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु

लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम् ॥ ८.६.५॥

फिर जिस समय यह इस शरीर से उत्क्रमण करता है उस समय इन किरणों से ही ऊपर की ओर चढ़ता है । वह ‘ॐ’ ऐसा कहकर ऊर्ध्वलोक अथवा अधोलोक को जाता है । वह जितनी देर में मन जाता है उतनी ही देर में आदित्य लोक में पहुँच जाता है । यह निश्चय ही लोकद्वार है । यह विद्वानों के लिए ब्रह्मलोक प्राप्ति का द्वार है और अविद्वानों का निरोधस्थान है ।5।

तदेष श्लोकः । शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां

मूर्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति

विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥ ८.६.६॥

इस विषय में यह मन्त्र है- ‘हृदय की एक सौ एक नाड़ियाँ हैं । उनमें से एक मस्तक की ओर निकल गयी है । उसके द्वारा ऊपर की ओर जाने वाला जीव अमरत्व को प्राप्त होता है, शेष इधर-उधर जाने वाली नाड़ियाँ केवल उत्क्रमण का कारण होती हैं, उत्क्रमण का कारण होती हैं ।6।

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

॥ सप्तम खण्ड ॥

य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको

विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः

स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति

सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह

प्रजापतिरुवाच ॥ ८.७.१॥

जो आत्मा पापशून्य, जरारहित, मृत्युहीन, विशोक, क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है उसे खोजना चाहिए और उसे विशेषरूप से जानने की इच्छा करनी चाहिए । जो उस आत्मा को शास्त्र और गुरु के उपदेशानुसार खोजकर जान लेता है वह सम्पूर्ण लोक और समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है- ऐसा प्रजापति ने कहा है ।1।

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त

तमात्मानमन्वेच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वाꣳश्च

लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामानितीन्द्रो हैव

देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ

हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः

॥ ८.७.२॥

प्रजापति के इस वाक्य को देवता और असुर दोनों ही ने परम्परा से जान लिया । वे कहने लगे- 'हम उस आत्मा को जानना चाहते हैं जिसे जानने पर जीव सम्पूर्ण लोकों और समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है'- ऐसा निश्चय कर देवताओं का राजा इन्द्र और असुरों का राजा विरोचन- ये दोनों परस्पर ईर्ष्या करते हुए हाथों में समिधाएँ लेकर प्रजापति के पास आये ।2।

तौ ह द्वात्रिꣳशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह

प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्तावास्तमिति तौ होचतुर्य

आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको

विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः

स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च

कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो

वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्तमिति ॥ ८.७.३॥

उन्होंने बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्यवास किया । तब उनसे प्रजापति ने कहा- 'तुम यहाँ किस इच्छा से रहे हो ?' उन्होंने कहा- 'जो आत्मा पापशून्य, जरारहित, मृत्युहीन, विशोक, क्षुधारहित, तृषाहीन, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है उसे खोजना चाहिए और उसे विशेषरूप से जानने की इच्छा करनी चाहिए । जो उस आत्मा का अन्वेषण कर उसे विशेषरूप से जान लेता है वह सम्पूर्ण लोक और समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है- 'इस श्रीमान् के वाक्य को शिष्टजन बतलाते हैं । उसी को जानने की इच्छा करते हुए हम यहाँ रहे हैं' ।3।

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते यश्चायमादर्शे कतम एष इत्येष उ एवैषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत इति होवाच

॥ ८.७.४॥

उनसे प्रजापति ने कहा- 'यह जो पुरुष नेत्रों में दिखाई देता है यह आत्मा है, यह अमृत है, यह अभय है, यह ब्रह्म है' । उन्होंने पूछा- 'भगवन् ! यह जो जल में सब ओर प्रतीत होता है और जो दर्पण में दिखाई देता है उनमें आत्मा कौन-सा ह ?' इस पर प्रजापति ने कहा- 'मैंने जिस नेत्रान्तर्गत पुरुष का वर्णन किया है वही इन सबमें सब ओर प्रतीत होता है' ।4।

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

॥ अष्टम खण्ड ॥

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे
प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेऽवेक्षांचक्राते तौ ह
प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तौ होचतुः
सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आ लोमभ्यः आ
नखेभ्यः प्रतिरूपमिति ॥ ८.८.१॥

'जलपूर्ण शकोरे में अपने को देखकर तुम आत्मा के विषय में जो न जान सको वह मुझे बतलाओ' ऐसा प्रजापति ने कहा । उन्होंने जल के शकोरे में देखा । उनसे प्रजापति ने कहा- 'तुम क्या देखते हो ?' उन्होंने कहा, 'भगवन् ! हम अपने इस समस्त आत्मा को लोम और नखपर्यन्त ज्यों-का-त्यों देखते हैं' ।1।

तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ
भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलंकृतौ
सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षांचक्राते

तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ॥ ८.८.२॥

उन दोनों से प्रजापति ने कहा- 'तुम अच्छी तरह अलंकृत होकर, सुन्दर वस्त्र पहनकर और परिष्कृत होकर जल के शकोरे में देखो ।' तब उन्होंने अच्छी तरह अलंकृत हो, सुन्दर वस्त्र धारण कर और परिष्कृत होकर जल के शकोरे में देखा । उनसे प्रजापति ने पूछा, 'तुम क्या देखते हो ?' ।2।

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ
परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ
परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति
तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः ॥ ८.८.३॥

। उन दोनों ने कहा- 'भगवन् ! जिस प्रकार हम दोनों उत्तम प्रकार से अलंकृत, सुन्दर वस्त्र धारण किये और परिष्कृत हैं उसी प्रकार हे भगवन् ! ये दोनों भी उत्तम प्रकार से अलंकृत, सुन्दर वस्त्रधारी और परिष्कृत हैं ।' तब प्रजापति ने कहा- 'यह आत्मा है, यह अमृत है और अभय है और यही ब्रह्म है ।' तब वे दोनों शान्तचित्त से चले गए ।3।

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचानुपलभ्यात्मानमननुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वासुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति ॥ ८.८.४॥

प्रजापति ने उन्हें देखकर कहा- 'ये दोनों आत्मा को उपलब्ध किये बिना- उसका साक्षात्कार किये बिना ही जा रहे हैं, देवता हों या असुर, जो कोई ऐसे निश्चय वाले होंगे उन्हीं का पराभव होगा ।' वह जो विरोचन था शान्तचित्त से असुरों के पास पहुँचा और उनको यह अध्यात्मविद्या सुनाई- 'इस लोक में आत्मा (देह) ही पूजनीय है और आत्मा ही सेवनीय है । आत्मा की ही पूजा और परिचर्या करनेवाला पुरुष इहलोक और परलोक दोनों लोकों को प्राप्त कर लेता है' ।4।

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणाꣳ ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति सꣳस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥ ८.८.५॥

इसी से इस लोक में जो दान न देने वाला, श्रद्धा न करने वाला और यजन न करने वाला पुरुष होता है उसे शिष्टजन 'अरे ! यह तो आसुर ही है' ऐसा कहते हैं । यह उपनिषद् असुरों की ही है । वे ही मृतक पुरुष के शरीर को भिक्षा, वस्त्र और अलंकार से सुसज्जित करते हैं और इसके द्वारा हम परलोक प्राप्त करेंगे- ऐसा मानते हैं ।5।

॥ इति अष्टमः खण्डः ॥

॥ नवम खण्ड ॥

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव

खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति

सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत

एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे

परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति

नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ ८.९.१॥

किन्तु इन्द्र को देवताओं के पास पहुँचे बिना ही यह भय दिखाई दिया कि जिस प्रकार इस शरीर के अच्छी तरह अलंकृत होने पर यह आत्मा अलंकृत होता है, सुन्दर वस्त्रधारी होने पर सुन्दर वस्त्रधारी होता है और परिष्कृत होने पर परिष्कृत होता है उसी प्रकार इसके अन्धे होने पर अन्धा हो जाता है, स्राम होने पर स्राम हो जाता है और खण्डित होने पर खण्डित हो जाता है तथा इस शरीर का नाश होने पर यह भी नष्ट हो जाता है ।1।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच

मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः सार्धं विरोचनेन

किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं

भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति

सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत

एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः

परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष

नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ ८.९.२॥

'इसमें मैं कोई भोग्य नहीं देखता ।' इसलिए वे समित्पाणि होकर फिर प्रजापति के पास आये । उससे प्रजापति ने कहा- 'इन्द्र ! तुम विरोचन के साथ शान्तचित्त होकर गए थे, अब किस इच्छा से पुनः आये हो ?' इन्द्र ने कहा- 'भगवन् ! जिस प्रकार इस शरीर के अच्छी तरह अलंकृत होने पर यह आत्मा अलंकृत होता है, सुन्दर वस्त्रधारी होने पर सुन्दर वस्त्रधारी होता है और परिष्कृत होने पर परिष्कृत होता है उसी प्रकार इसके अन्धे होने पर अन्धा हो जाता है, स्राम होने पर स्राम हो जाता है और खण्डित होने पर खण्डित हो जाता है तथा इस शरीर का नाश होने पर यह भी नष्ट हो जाता है, मुझे इसमें कोई फल नहीं दिखाई देता' ।2।

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते

भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति

स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच

॥ ८.९.३ ॥

'हे इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है' ऐसा प्रजापति ने कहा, 'मैं तुम्हारे प्रति उसकी पुनः व्याख्या करूँगा । अब तुम बत्तीस वर्ष यहाँ और रहो' । इन्द्र ने वहाँ बत्तीस वर्ष और निवास किया । तब प्रजापति ने उससे कहा ।3।

॥ इति नवमः खण्डः ॥

॥ दशम खण्ड ॥

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति
होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः
प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श
तद्यद्यपीदꣳ शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि
स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ ८.१०.१॥

'जो यह स्वप्न में पूजित होता हुआ विचरता है यह आत्मा है' ऐसा प्रजापति ने कहा 'यह अमृत है, अभय है, और यही ब्रह्म है ।' ऐसा सुनकर इन्द्र शान्तहृदय से चला गया । किन्तु देवताओं के पास पहुँचे बिना ही उसे यह भय दिखाई दिया 'यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है तो भी वह अनन्ध होता है और यदि यह स्राम होता है तो भी वह अस्राम होता है । इस प्रकार यह इसके दोष से दूषित नहीं होता' । 1।

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं
विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र
भोग्यं पश्यामीति ॥ ८.१०.२॥

'यह इस देह के वध से नष्ट भी नहीं होता और न इसकी स्रामता से स्राम होता है । किन्तु इसे मानो कोई मरता हो, कोई ताड़ित करता हो, यह मानो अप्रियवेत्ता हो और रुदन करता हो- ऐसा हो जाता है, अतः इसमें मैं कोई फल नहीं देखता' ।2।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच

मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम

इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः

स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति

॥ ८.१०.३॥

वह समित्पाणि होकर फिर प्रजापति के पास आया । उससे प्रजापति ने कहा- 'इन्द्र ! तुम तो शान्तचित्त होकर गए थे, अब किस इच्छा से पुनः आये हो ?' इन्द्र ने कहा- भगवन् ! यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है तो भी वह अनन्ध रहता है और यदि यह स्राम होता है तो भी वह अस्राम रहता है । इस प्रकार यह इसके दोष से दूषित नहीं होता' ।3।

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच

॥ ८.१०.४ ॥

न इस देह के वध से नष्ट भी होता है और न इसकी स्रामता से स्राम होता है । किन्तु इसे मानो कोई मरता हो, कोई ताड़ित करता हो, यह मानो अप्रियवेत्ता हो और रुदन करता हो- ऐसा हो जाता है, अतः इसमें मैं कोई फल नहीं देखता' । तब प्रजापति ने कहा- 'हे इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है, मैं तुम्हारे प्रति उसकी पुनः व्याख्या करूँगा । अब तुम बत्तीस वर्ष यहाँ और रहो' । इन्द्र ने वहाँ बत्तीस वर्ष और निवास किया । तब प्रजापति ने उससे कहा ।4।

॥ इति दशमः खण्डः ॥

॥ एकादश खण्ड ॥

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष
आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः
प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाह
खल्वयमेवꣳ सम्प्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति
नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र
भोग्यं पश्यामीति ॥ ८.११.१॥

'जिस अवस्था में यह सोया हुआ दर्शनवृत्ति से रहित और सम्यक्-रूप से आनन्दित हो स्वप्न का अनुभव नहीं करता वह आत्मा है'- ऐसा प्रजापति ने कहा 'यह अमृत है, अभय है, और यही ब्रह्म है ।' ऐसा सुनकर इन्द्र शान्तहृदय से चला गया । किन्तु देवताओं के पास पहुँचे बिना ही उसे यह भय दिखाई दिया- 'उस अवस्था में तो इसे निश्चय ही यह भी ज्ञान नहीं होता कि 'यह मैं हूँ' और न यह इन अन्य भूतों को ही जानता है, उस समय तो यह मानो विनाश को प्राप्त हो जाता है । अतः इसमें मैं कोई फल नहीं देखता' ।1।

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच

मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति

स होवाच नाह खल्वयं भगव एवꣳ सम्प्रत्यात्मानं

जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि

विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति

॥ ८.११.२॥

वह समित्पाणि होकर फिर प्रजापति के पास आया। उससे प्रजापति ने कहा- 'इन्द्र ! तुम तो शान्तचित्त होकर गए थे, अब किस इच्छा से पुनः आये हो ?' इन्द्र ने कहा- भगवन् ! उस अवस्था में तो इसे यह भी ज्ञान नहीं होता कि 'यह मैं हूँ' और न यह इन अन्य भूतों को ही जानता है, उस समय तो यह मानो विनाश को प्राप्त हो जाता है। अतः इसमें मैं कोई फल नहीं देखता'। 2।

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते

भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि

पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास

तान्येकशतꣳ सम्पेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतꣳ ह वै वर्षाणि

मघवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ॥ ८.११.३॥

तब प्रजापति ने कहा- 'हे इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है, मैं तुम्हारे प्रति उसकी पुनः व्याख्या करूँगा । आत्मा इससे भिन्न नहीं है । अभी तुम पाँच वर्ष यहाँ ब्रह्मचर्यवास करो' । इन्द्र ने वहाँ पाँच वर्ष और निवास किया । ये सब मिलकर एक सौ एक वर्ष हो गए । इसी से ऐसा कहते हैं कि इन्द्र ने एक सौ एक वर्ष तक प्रजापति के यहाँ ब्रह्मचर्यवास किया । तब प्रजापति ने उससे कहा ।3।

॥ इति एकादशः खण्डः ॥

॥ द्वादश खण्ड ॥

मघवन्मर्त्यं वा इद९ शरीरमात्तं मृत्युना

तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै

सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः

प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न

प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ ८.१२.१॥

हे इन्द्र ! यह शरीर मरणशील ही है, यह मृत्यु से ग्रस्त है । यह इस अमृत, अशरीरी आत्मा का अधिष्ठान है । सशरीर आत्मा निश्चय ही प्रिय और अप्रिय से ग्रस्त है, सशरीर रहते हुए इसके प्रियाप्रिय का नाश नहीं हो सकता और अशरीर होने पर इसे प्रिय और अप्रिय स्पर्श नहीं कर सकते ।1।

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि

तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य

स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥ ८.१२.२॥।

वायु अशरीर है, अभ्र, विद्‌युत और मेघध्वनि ये सब अशरीर हैं । जिस प्रकार ये सब उस आकाश से समुत्थान कर सूर्य की परम ज्योति को प्राप्त हो अपने स्वरूप में परिणत हो जाते है ।2।

एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं

ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः

स तत्र पर्येति जक्षत्क्रीडन्रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा

ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳ स्मरन्निदꣳ शरीरꣳ स यथा

प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे

प्राणो युक्तः ॥ ८.१२.३॥

उसी प्रकार यह सम्प्रसाद इस शरीर से समुत्थान कर परम ज्योति को प्राप्त हो अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है । वह उत्तम पुरुष है । उस अवस्था में वह हँसता, क्रीड़ा करता और स्त्री, यान अथवा

ज्ञातिजन के साथ रमण करता अपने साथ उत्पन्न हुए इस शरीर को स्मरण न करता हुआ सब ओर विचरता है । जिस प्रकार घोड़ा या बैल गाड़ी में जुता रहता है उसी प्रकार यह प्राण इस शरीर में जुता हुआ है ।3।

अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः

पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा

गन्धाय घ्राणमथ यो वेदेदमभिव्याहराणीति स

आत्माभिव्याहाराय वागथ यो वेदेद१ृ शृणवानीति

स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥ ८.१२.४॥

जिसमें यह चक्षु द्वारा उपलक्षित आकाश अनुगत है वह चाक्षुष पुरुष है, उसके रूपग्रहण के लिए नेत्रेन्द्रिय है । जो ऐसा अनुभव करता है कि मैं इसे सूँघूँ वह आत्मा है, उसके गन्धग्रहण के लिए नासिका है और जो ऐसा समझता है कि मैं यह शब्द बोलूँ यही आत्मा है, उसके शब्दोच्चारण के लिए वागिन्द्रिय है तथा तथा जो ऐसा जानता है कि मैं यह श्रवण करूँ, वह भी आत्मा, उसके श्रवण के लिए श्रोत्रेन्द्रिय है ।4।

अथ यो वेदेदं मन्वानीति सात्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते

य एते ब्रह्मलोके ॥ ८.१२.५॥

और जो यह जानता है कि मैं मनन करूँ वह आत्मा है । मन उसका दिव्य नेत्र है, वह यह आत्मा इस दिव्य चक्षु के द्वारा भोगों को देखता हुआ रमण करता है ।5।

तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाꣳ सर्वे च

लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति

सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह

प्र्जापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ८.१२.६॥

जो ये भोग इस ब्रह्मलोक में हैं उन्हें देखता हुआ रमण करता है । उस आत्मा की देवगण उपासना करते हैं । इसी से उन्हें सम्पूर्ण लोक और समस्त भोग प्राप्त हैं । जो उस आत्मा को शास्त्र और आचार्य

के उपदेशानुसार जानकर साक्षातरूप से अनुभव करता है वह सम्पूर्ण लोक और समस्त भोगों को प्राप्त कर लेता है । ऐसा प्रजापति ने कहा, प्रजापति ने कहा ।6।

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

॥ त्रयोदश खण्ड ॥

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व
इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य
धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा
ब्रह्मलोकमभिसंभवामीत्यभिसंभवामीति ॥ ८.१३.१॥

मैं श्याम से शबल को प्राप्त होऊँ और शबल से श्याम को प्राप्त होऊँ । अश्व जिस प्रकार रोएँ झाड़कर निर्मल हो जाता है उसी प्रकार मैं पापों को झाड़कर तथा राहु के मुख से निकले चन्द्रमा के समान

शरीर को त्यागकर कृतकृत्य हो अकृत ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ ।1।

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

॥ चतुर्दश खण्ड ॥

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा

तद्ब्रह्म तदमृतꣳ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये

यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशोविशां

यशोऽहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः

श्येतमदत्कमदत्कꣳ श्येतं लिन्दु माभिगां लिन्दु

माभिगाम् ॥ ८.१४.१॥

आकाश नाम से प्रसिद्ध आत्मा नाम और रूप का निर्वाह करने वाला है । वे नाम-रूप जिसके अन्तर्गत हैं वह ब्रह्म है, वह अमृत है, वही आत्मा है । मैं प्रजापति के सभागृह को प्राप्त होता हूँ, मैं यशः संज्ञक आत्मा हूँ, मैं ब्राह्मणों के यश, क्षत्रियों के यश और वैश्यों के यश को प्राप्त होना चाहता हूँ, वह मैं यशों का यश हूँ, मैं बिना दाँतों के भक्षण करने वाले रोहित वर्ण पिच्छिल स्त्रीचिह्न को प्राप्त न होऊँ, प्राप्त न होऊँ ।1।

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

॥ पञ्चदश खण्ड ॥

तधैतद्ब्रह्मा प्रजापतयै उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः

प्रजाभ्यः आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः

कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे

स्वाध्यायमधीयानो धर्मिकान्विदधदात्मनि सर्वैन्द्रियाणि

सम्प्रतिष्ठाप्याहिꣳसन्सर्व भूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः

स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते

न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥ ८.१५.१॥

उस इस आत्मज्ञान का ब्रह्मा ने प्रजापति के प्रति वर्णन किया, प्रजापति ने मनु से कहा, मनु ने प्रजावर्ग को सुनाया । नियमानुसार गुरु के कर्तव्यकर्मों को समाप्त करता हुआ वेद का अध्ययन कर आचार्यकुल से समावर्तन कर कुटुम्ब में स्थित हो पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ, धार्मिक कर सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने अंतःकरण में स्थापित कर शास्त्र की आज्ञा से अन्यत्र प्राणियों की हिंसा न करता हुआ वह निश्चय ही आयु की समाप्ति पर्यन्त इस प्रकार बर्तता हुआ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, और फिर नहीं लौटता, फिर नहीं लौटता ।1।

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः

श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि ।

सर्वं ब्रह्मौपनिषदंमाऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु ।

तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

मेरे सभी अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत, बल तथा सम्पूर्ण इन्द्रियां पुष्ट हों। यह सब उपनिशद्वेद्य ब्रह्म है । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ तथा ब्रह्म मेरा निराकरण न करें अर्थात मैं ब्रह्म से विमुख न होऊं और ब्रह्म मेरा परित्याग न करें। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो । उपनिषदों मे जो धर्म हैं वे आत्मज्ञान मे लगे हुए मुझ मे स्थापित हों। मुझ मे स्थापित हों।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

मेरे त्रिविध– अधिभौतिक, अधिदैविक तथा आध्यात्मिक तापों की शांति हो।

॥ इति छान्दोग्योऽपनिषद् ॥